
मिथिला चित्र-कोर
भाग-3
प्रकाशक
भारती विकास मंच, बरहेता



मिथिला चित्र-कोर

भाग-३

लेखक

कृष्ण कुमार कश्यप

एवं

शशिबाला

भारती विकास मंच, बरहेता

लहेरियासराय, दरभंगा - ८४६ ००१

मुख्य वितरक : भारती विकास मंच
बरहेता , लहेरियासराय
दरभंगा-८४६००१ बिहार
टेलीफोन-०६२७२-२४०५५६
स्वत्वाधिकार : कश्यप एवं शशिबाला
कम्प्यूटर कार्य : मेधा मेघाशिनी और अभय कुमार झा
मुद्रित संस्करण : २००६ ईस्वी
मूल्य : दो सौ पचास रुपये मात्र
हस्तलिपि : कश्यप
आवरण-चित्र : कश्यप एवं शशिबाला

भूमिका

मिथिला चित्रशैलीका सम्बंध इसके परम्परागत प्रयोगकर्त्ताओंकी सम्पूर्ण सामाजिक - सांस्कृतिक जीवन - पद्धतिसे रहा है और उनके बीचमें यह चित्र - आधारित सामाजिक परम्परा आज भी अक्षुण्ण है, उनके वंशानुगत पहचानकी तरह।

इस पुस्तकके जन्मकी प्रक्रिया सन् उन्नीस सौ बिरासी-तिरासीमें
उस समय प्रारम्भ हुई जब नवजात संस्था भारती विकास मंच
(बरहेता, दरभंगा) में बालिकाओं-महिलाओंके लिए संत विनोबाके
"जीवन और शिक्षण" सिद्धान्तपर आधारित विद्यालय प्रारम्भ
हुआ। वह एक अत्यन्त कठिन समय था। संकल्पके अतिरिक्त
उस समय हमारे पास कुछ भी नहीं था। हमने मिथिला और गोदना
चित्रशैलियोंके अलावा परम्परागत कशीदा-कलाको शिक्षण-विषयके
रूपमें चुना था जिनमें किसी तरहकी लिखित सामग्रीका सर्वथा
अभाव था। हमारे पास न भूमि थी, न घर था और एक बेल-वृक्षकी
छायामें विद्यालय प्रारम्भ हुआ। इन कठिनाइयोंके अलावा सबसे
बड़ी कठिनाई थी छात्राओंको जुटाना। उन दिनों दरभंगा जिलेके
ग्रामीण क्षेत्रमें बालिका-शिक्षाकी सामाजिक मान्यता नहीं मिली थी।
खासकर श्रमिक और दलित वर्गमें कहीं दूर तक भी बालिका-शिक्षाकी
चर्चा नहीं थी। उच्च जातियोंकी बालिकाएँ पढ़ती तो थीं, किन्तु
उन्हें कमानेकी छूट नहीं थी। ऐसी विकट परिस्थितिमें जब
बरहेता ग्राममें सभी जाति-धर्मकी स्त्रियोंके लिए 'पढ़ाईके साथ कमाई'
का विद्यालय प्रारम्भ हुआ तो गाँवके कुछ महिला-विरोधी कट्टरपंथियोंने

सुनियोजित उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। एक तो अभाव, ऊपरसे अशांति। लेकिन कहते हैं, जहाँ चाह वहीं राह। सो, काम-चल निकला। काम चलानेमें 'कोर' बहुत सहायक सिद्ध हुए।

'कोर' के संकलन और विकासमें श्रीमती शिवा कश्यप, अनीता, विनीता, बसन्ती और अनेक शिल्प-छात्राओंका महत्वपूर्ण योगदान है। यह पुस्तक सबके लिए है — बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय।

'मिथिला चित्र शिक्षा' पुस्तक-मालाका तीसरा पुष्प यह 'मिथिला कोर' चित्रके साथ साहित्य विषयक पाठ्य सामग्री है।

शुभमस्तु!

त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पयामि।

बसन्त पंचमी
१७ फरबरी, २००२.

कृष्ण कुमार कश्यप

शशिबाला

परिछन

श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने विवाह के बाद पहली बार अयोध्या आगमन पर, दुलहन श्रीसीताजी चारों बहिनी और दुलहा श्रीरामजी चारों भाइयों के परिछन का वर्णन किया है -

"निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवरे देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चली लवाइ निकेत ॥"

'परिछन' अत्युच्च शुभाकांक्षा और परमादरनीय स्वागत विधि है। बारात सहित दुलहा या दुलहिन सहित दुलहा, पाहुन जब प्रथम-प्रथम द्वार पर पधारते है तो उनका स्वागत परम्परागत परिछन विधि से किया जाता है। यह मिथिला की सर्वजातीय विधि-परम्परा है, जिसके बाद वर-बधू गृह-प्रवेश करते है। अध्ययन के रूप में 'कोर' पहली बार आपके द्वार पधारे हैं। दूर्वा-अक्षत से इनका परिछन कर आशीस दें कि सबका शुभ हो ! शुभ हो !!

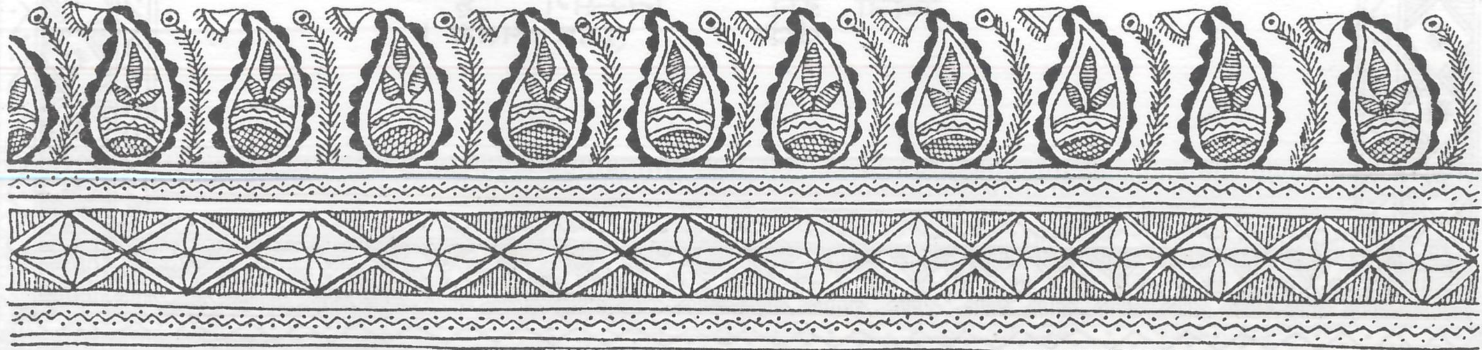
विनीत :
कृष्ण कुमार कश्यप
१५ सितम्बर, २००६

मिथिला चित्रमें कोर

किसी चित्रके अंश, खण्ड या सम्पूर्णताके द्योतक किसी रचनाको, जो उसे एक पृथक या स्थानीय पहचान देती हो और चित्र-रचनाके क्षेत्रका परिसीमन करती हो उसे कोर याबॉर्डर कहते हैं।

मिथिला चित्र-परम्परामें चित्रांकनका प्रारम्भ कोरसे होता है। कोर माने होता है सीमा, किनारी जैसे खेतोंमें आरी। इस लोकशैलीकी सभी तरहकी चित्र-रचना कोरसे सज्जित क्षेत्रमें की जाती है। भित्तिपर बनाना हो, भूमिपर बनाना हो चाहे कागज या कपड़ेपर बनाना हो —— मिथिला चित्र सदैव कोरके भीतर बनाए जाते हैं।

कोर मिथिलासंस्कृतिका सौरभ है।



एक कहावत है —
मिथिलाका कोर,
बंगालका मास्टर झोल और
मथुराका चोर (कृष्ण) —
दुनियामें नामी हैं।

कोर और डोरकी महिमाका दन्त साहित्योंमें व्यापक बखान हुआ है —

बिना कोर सब ओर है
जैसे प्रकृति अनंग,
बिना डोर निस्संग है
जैसे पुरुष - पतंग।

मिथिला चित्र मात्र सौन्दर्यबोध या कलात्मक अभिव्यक्तिका माध्यम ही नहीं है बल्कि इसकी जड़ें अतीतकी अपरिमित सीमा तक फैली हैं, जिसकी एक-एक अभिव्यंजना किसी अनबूझे मंत्रकी तरह अन्तश्चेतनाकी अतल गहराइयोंसे उठनेवाली ऊर्जा-ध्वनिकी तरह प्रकम्पित है। इस प्रकम्पनकी निरन्तरता ही जीव-जगतका ऐहिक सुख है।

कोरके अलंकरण तत्व

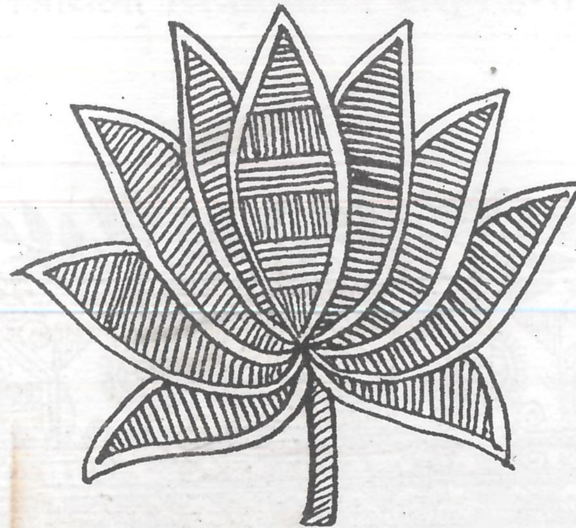
मिथिला चित्रशैलीके कोर मुख्यतः विशिष्ट प्रतीकोंसे बनाए जाते हैं। इन प्रतीकोंमें कमल, पुरइन, मत्स्य, शंख, सुग्गा, पान, भ्रमर, बाँस, नयन, सर्प, हाथी, कच्छप, सूर्य, चन्द्र, योनि प्रमुख हैं। इन प्रतीकोंसे निर्मित कोर क्रमशः आगेके पृष्ठोंमें दिए जा रहे हैं। इन स्थापित प्रतीकोंके अतिरिक्त वानस्पतिक अवयवों (फूल, पत्ते, घास, काँटे, शैवाल आदि) से भी कोरकी रचना होती है, जिनका प्रचलन मिथिला चित्रशैलीकी संगवहिना " गोदना चित्रशैली " में प्रचुर है।

मिथिला चित्रशैलीमें प्रयुक्त होनेवाले प्रतीक लोक-जीवनसे जुड़े दैनन्दिन उपयोगके प्राकृतिक अवयव हैं जिनके साहित्य, कला, धर्म और परम्पराकी दृष्टिसे विशेषार्थ होते हैं। परम्परानुसार प्रतीकोंके दो भेद हैं —— **श्रेय और प्रमेय**। कमल, मांछ, सुग्गा, शंख, पुरइन, हाथी, सूर्य, चन्द्रमा, कलश, नयन आदि श्रेय प्रतीक हैं जबकि साँप, बिच्छू, भौंरा, मेढक, मगर आदि प्रमेय प्रतीक। ये सभी प्रतीक शुभ और मंगलकारक हैं।

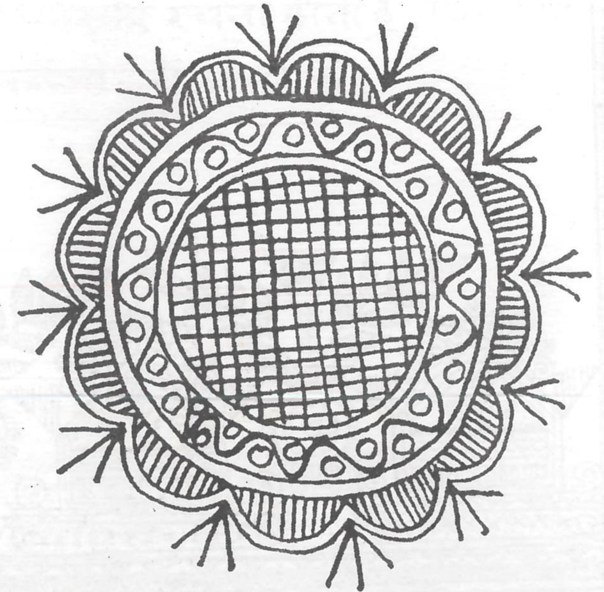


प्रतीक :-

कमल



पुरइन



माछ



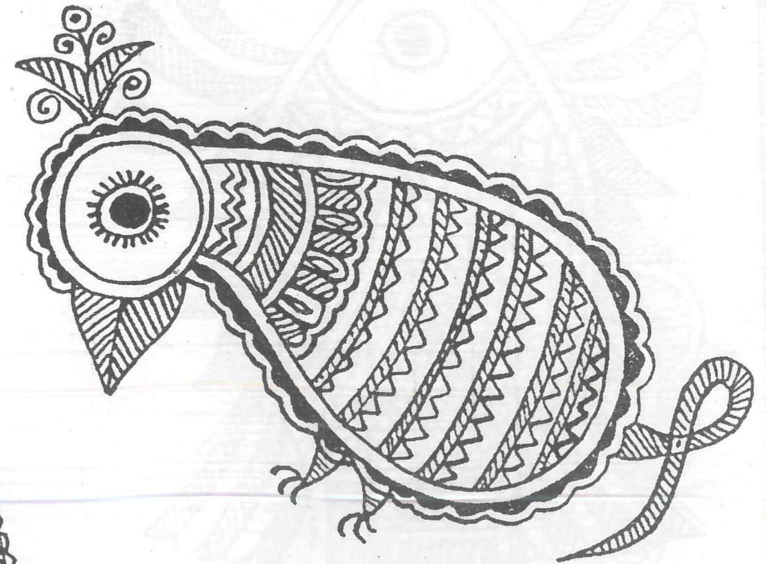
शंख



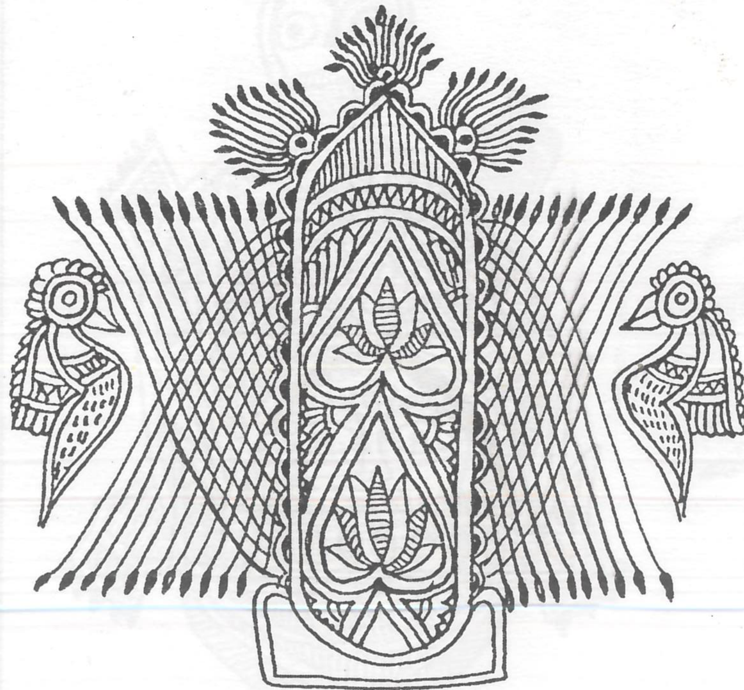
सुग्गा



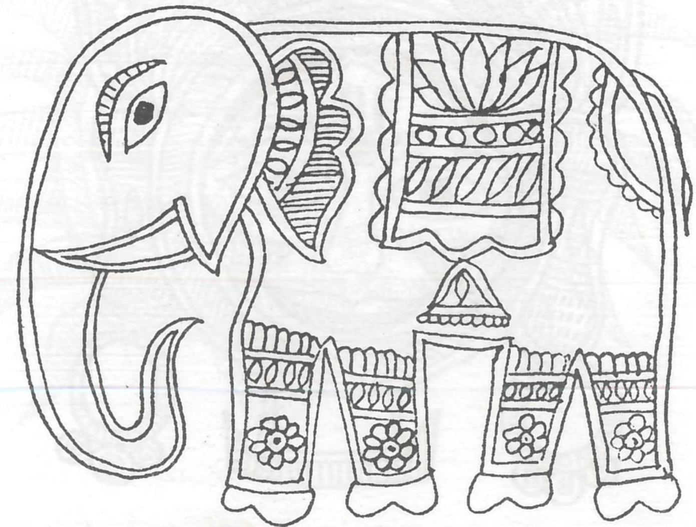
भौंरा



बाँस



हाथी



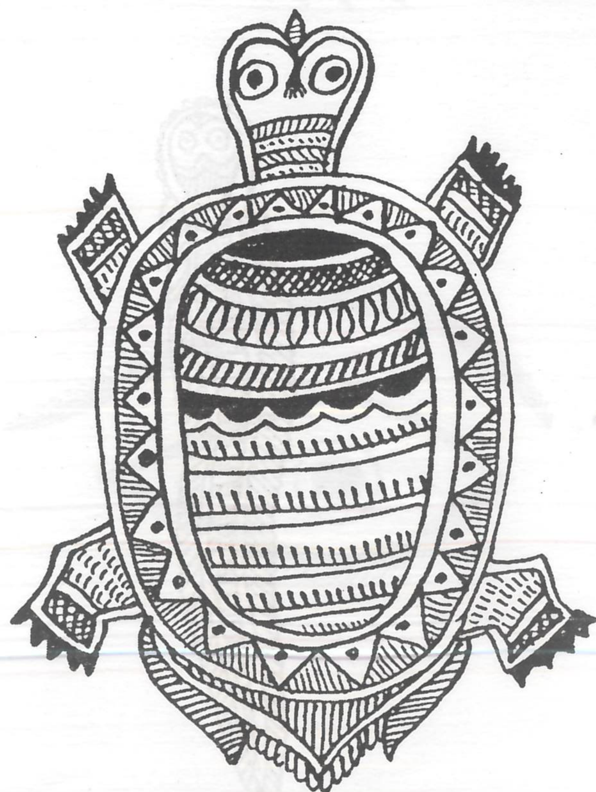
सूर्य



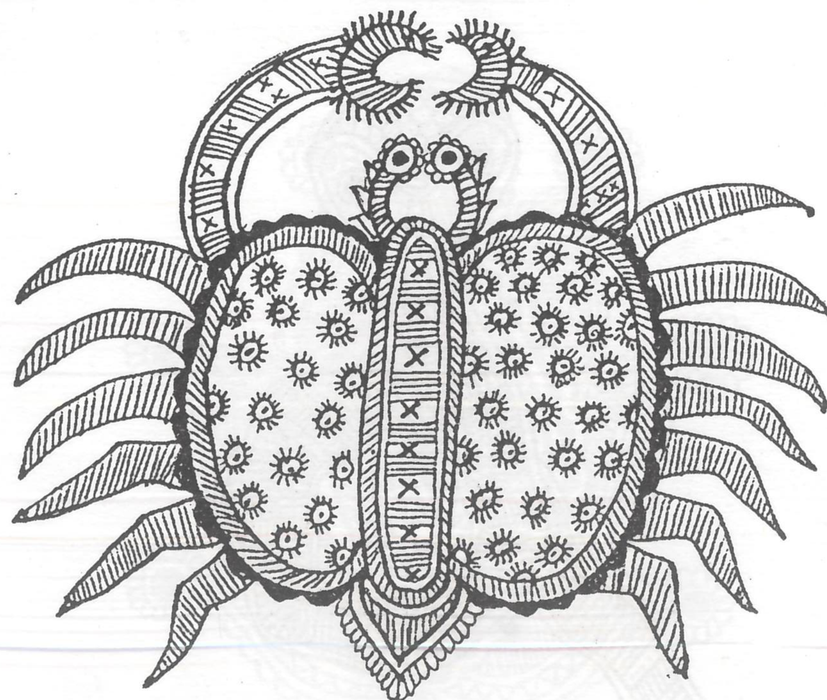
चन्द्र



कच्छप



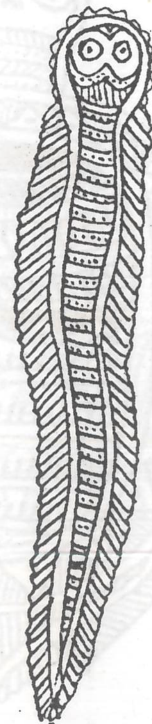
काँकोर



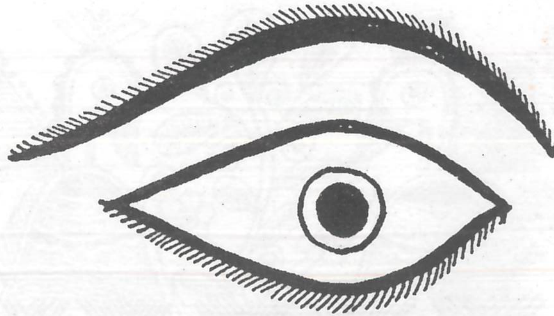
सर्प



बिच्छू



नयन



योनि



कोरके प्रकार :

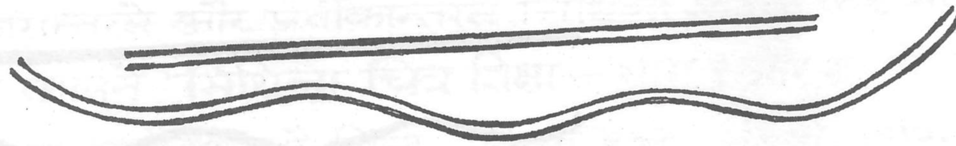
प्रकारान्तरसे और प्रतीकान्तरसे मिथिला कोरके कई भेद हैं। प्रतीकोंके सम्बंधमें आपने '**मिथिला चित्र शिक्षा** – भाग १ और २' में अध्ययन किया होगा। प्रतीकका अर्थ होता है चिन्ह ; किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदिके सूचक चिन्ह।

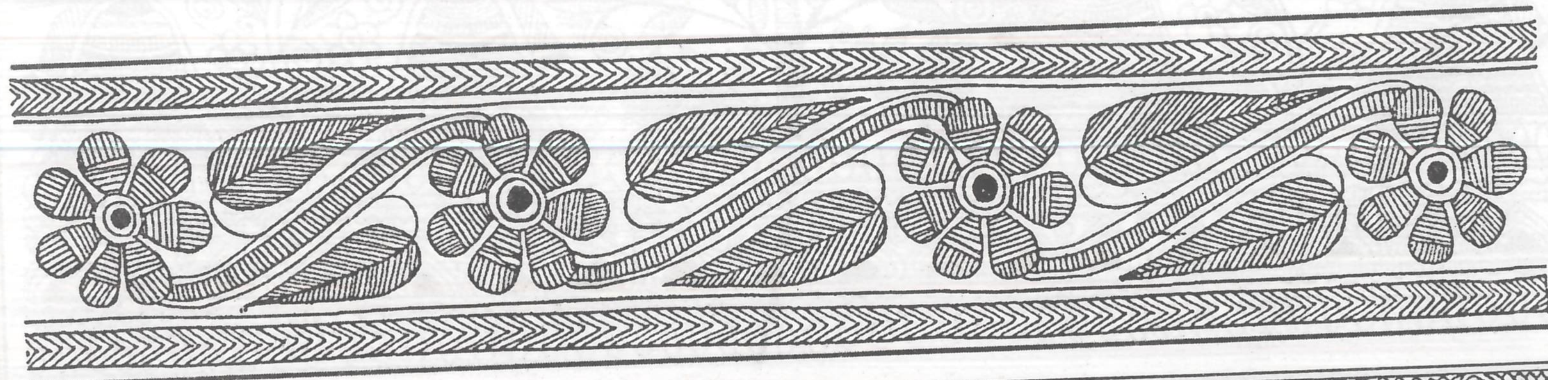
जब किसी सरल या वक्ररेखासे क्षेत्रको घेरते हैं तो उस एकल रेखा को **रज्जु**, **तन्तु** या **डोरी** कहते हैं।

वस्तुतः रज्जु, तन्तु या डोरी कोर नहीं होते।

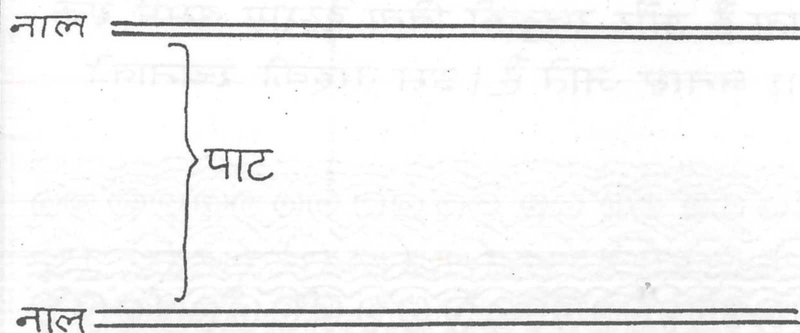


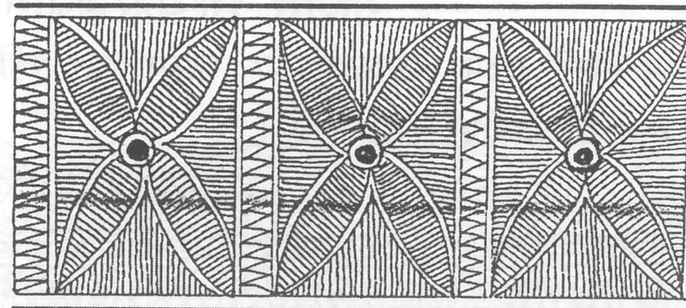
जब रज्जु या डोरीको दुहराते हैं तो उस दुहरे रज्जुको **नाल** कहते हैं।

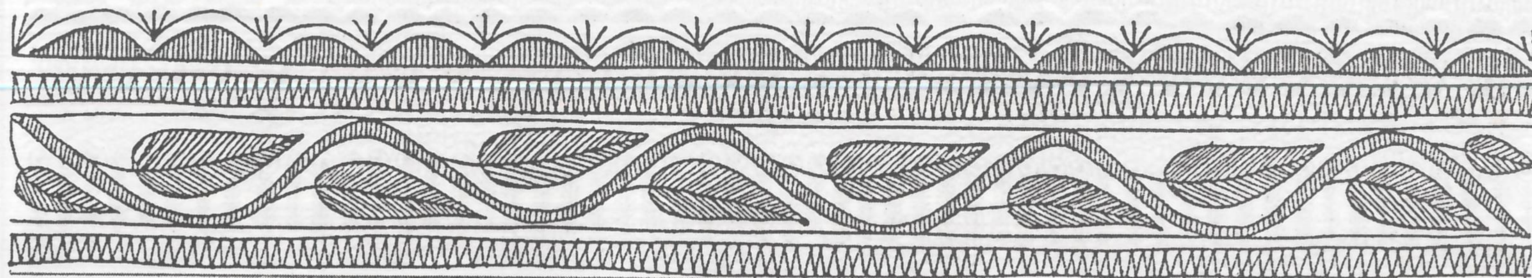




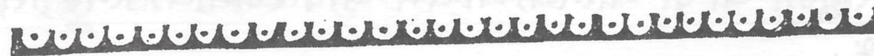
पाट : दुहरे रज्जुओं या दो नालके बीचमें यदि रचनाके लिए रिक्ति हो तो उस स्थानको **पाट** कहते हैं।





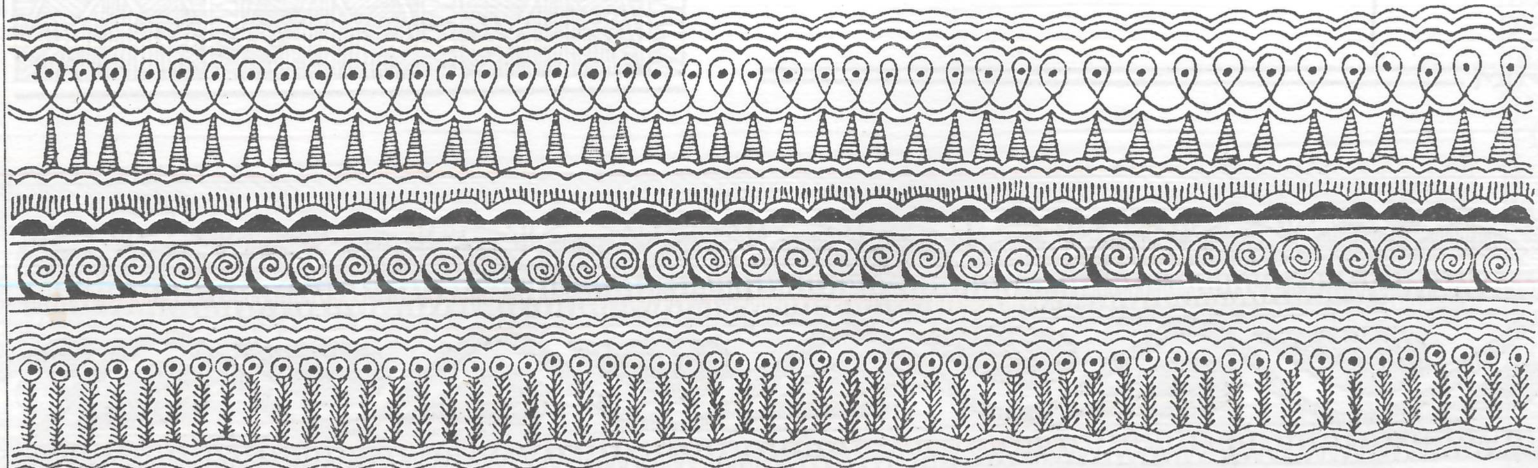


एकल कोर



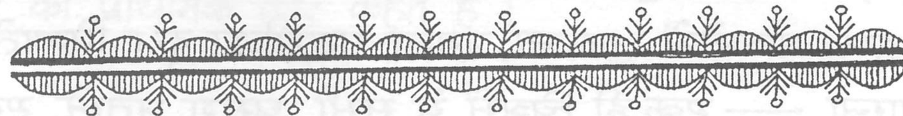


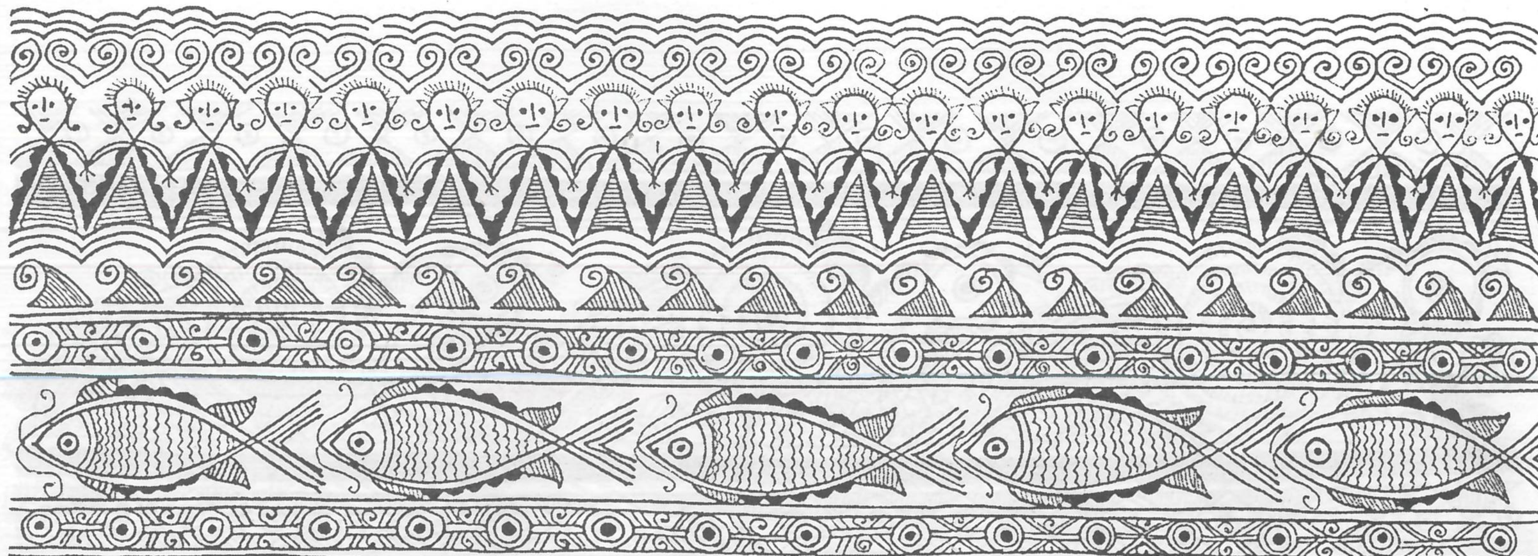
नालसे भी कोर बनाया जाता है और रज्जुको बिना दुहराए उसमें एक या दोनों तरफ अलंकरण लगा कर भी कोर बनाए जाते हैं। इस तरहकी रचनाको **एकल कोर** कहते हैं।



दुहरा कोर : दो एकल कोर मिलकर दुहरा कोर बनाते हैं।

दुहरा कोर





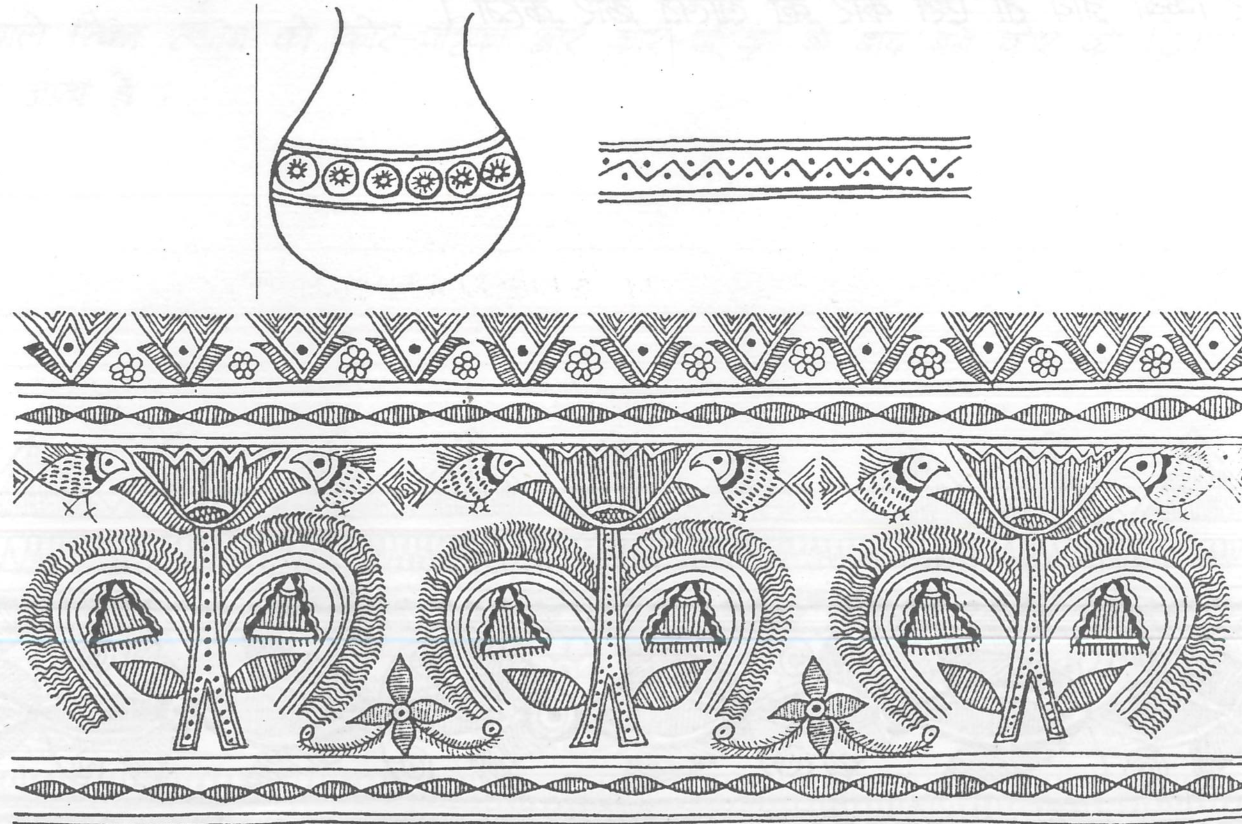
मिथिला शैलीके एक ही चित्रमें कभी-कभी कई प्रसंग समायोजित होते हैं। उदाहरणके लिए, कृष्णलीलासे सम्बंधित किसी चित्रमें एक साथ ही कारागारमें कृष्णका जन्म, नवजात कृष्णको बाँसकी टोकरीमें रखकर वासुदेवका यमुना पार करना, यशोदा द्वारा पालनेमें झुलाना, पूतना राक्षसीका दूध पिलाते हुए मरना या फिर बकासुरको मारना — एक ही चित्रमें ये सभी प्रसंग पतले, एकल कोरसे परिवेष्ठित दिखाए जाते हैं। इस तरहके एकल कोरको **आभ्यान्तरिक कोर** कहते हैं। एक ही चित्रमें कई आभ्यान्तरिक कोर हो सकते हैं।



प्राथमिक कोर : किसी मूल प्रतीक के दोनो ओर दुहरे कोर लगाकर यदि कोर बनाया जाता है तो ऐसे कोर को प्राथमिक कोर कहते हैं ।

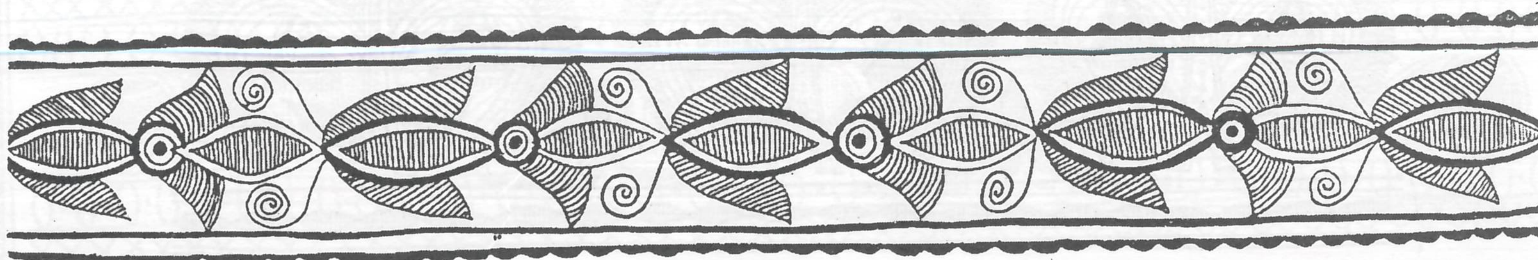
सुलभ कोर : यदि पाट में कोई ज्यामितिक प्रतीक देकर उसके दोनों तरफ केवल डोरी लगाकर कोर बनाते हैं तो ऐसे कोर को सुलभ कोर कहते हैं।

निर्मल कोर :- दोनों तरफ पतले नाल और बीचके पाटमें तैरते-से प्रतीक-- ऐसे कोरको निर्मलकोर कहेंगे। इस तरहके कोरका अति सुन्दर उदाहरण हड़प्पा सभ्यतासे सम्बंधित उत्खननोंसे प्राप्त चित्रित पात्रोंमें देखा जा सकता है —

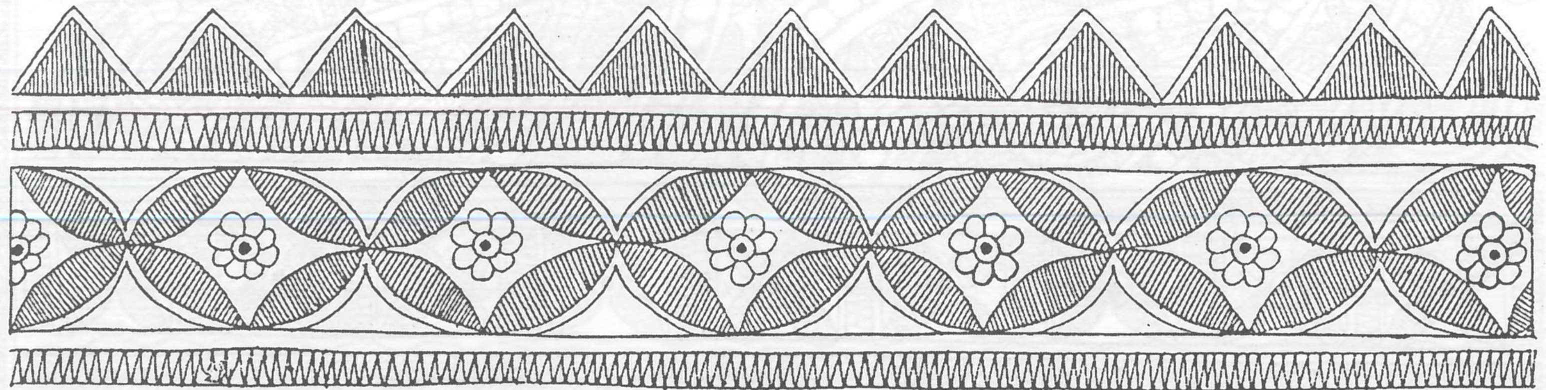


ललित कोर :-

यदि किसी प्राथमिक कोर में , बाहरी या भीतरी भाग में , केवल एक तरफ बिना ढ़ेर के कोर का विस्तार किया जाय तो ऐसे कोर को ललित कोर कहेंगे ।

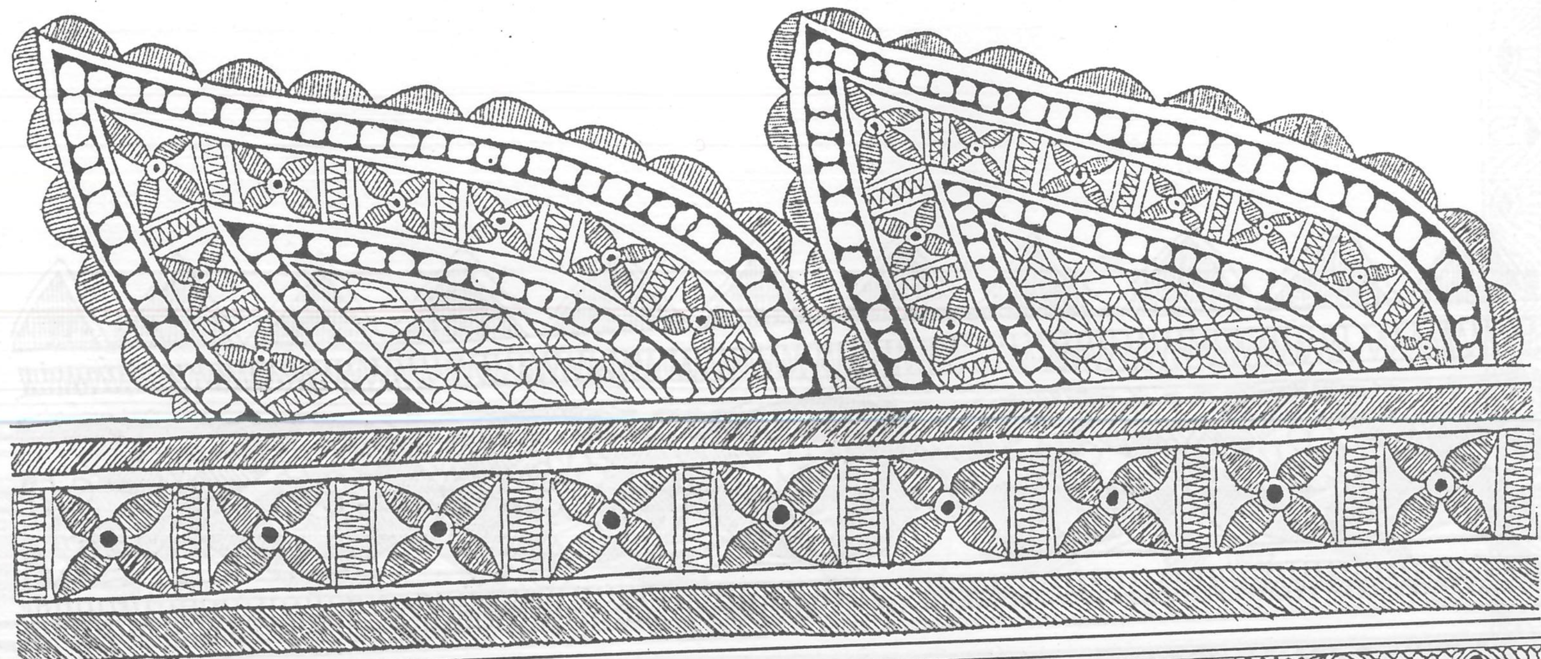


मुख्य कोर और द्वितीयक कोर : कभी-कभी एक कोर के बाद रिक्त स्थान और पुनः दूसरा कोर बना दिखता है। इस तरह की रचना में भीतर वाले कोर को मुख्य कोर , मुख्य कोर के बाद वाले रिक्त स्थान को कोर-पट्टिका और कोर-पट्टिका के बाद बने कोर को द्वितीयक कोर कहा जाता है ।

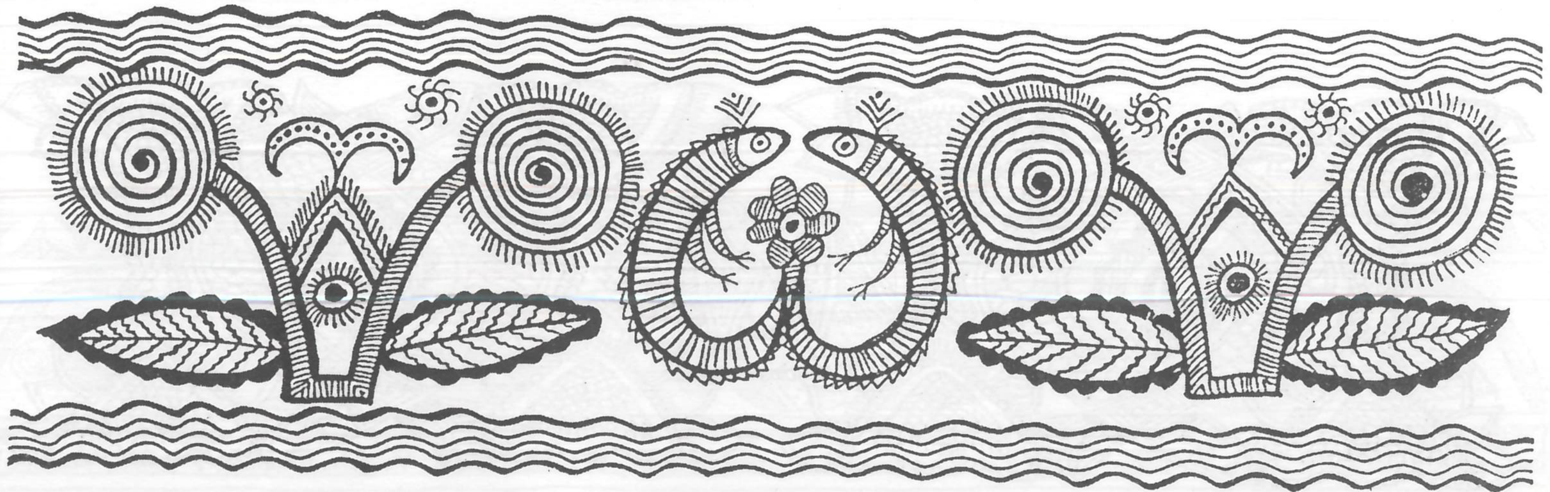


सरस कोर :-

यदि नाल और पाट दोनोंमें वानस्पतिक अवयवों या सामान्य अलंकरणोंसे कोरकी रचना की जाती हैं तो ऐसे कोरको सरसकोर कहेंगे।



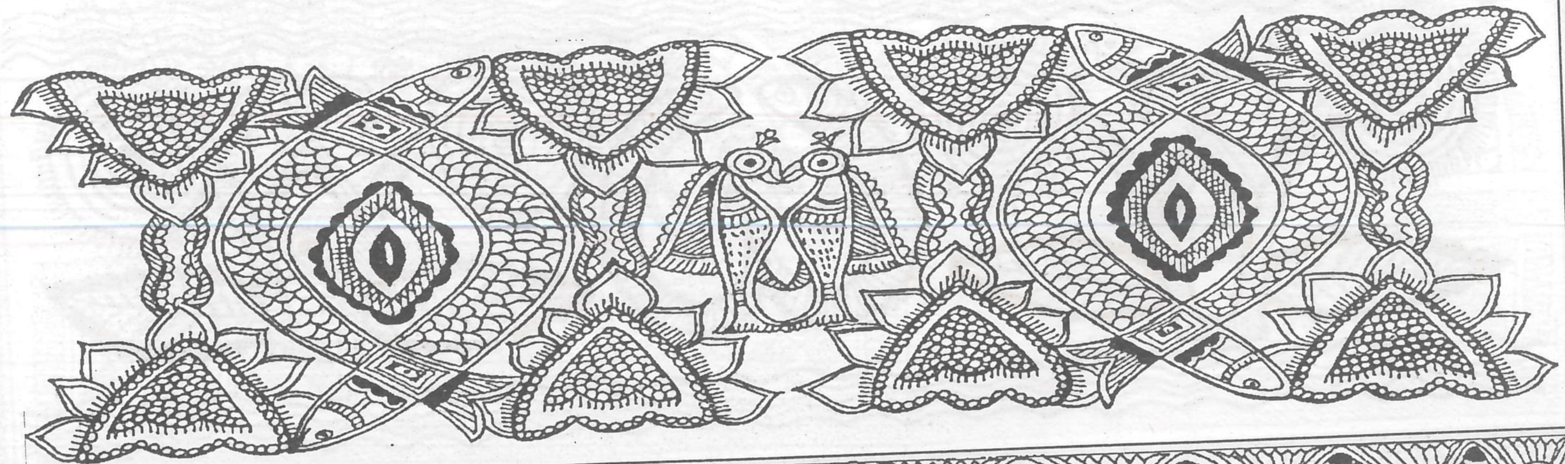
जटिल कोर : यदि मुख्य या केन्द्रीय पाट पर कोई एक या भिन्न-भिन्न ज्यामितिक प्रतीक लगाकर, दो या दो से अधिक कोर बनाया जाता है तो इस तरह की रचना को जटिल कोर कहा जाता है।



अध्ययन के विषय के रूप में पहली बार "कोर" अपने विद्यालयी रूप में आपके सामने आया है । यद्यपि कि भारती विकास मंच की छात्राओं ने इस रूप में 'कोर' का अध्ययन किया और व्यावसायिक फैशन वस्त्रों के निर्माण में इस पद्धति का प्रचुर उपयोग भी किया, किन्तु सार्वजनिक तौर पर पहली बार कोर के प्रकार प्रकाशित हुए हैं । इस अध्याय को जिज्ञासु छात्र अपनी मेधा शक्ति से और भी समृद्ध कर सकते हैं ।

कामायनी

रसो वै सः



कमलकोर

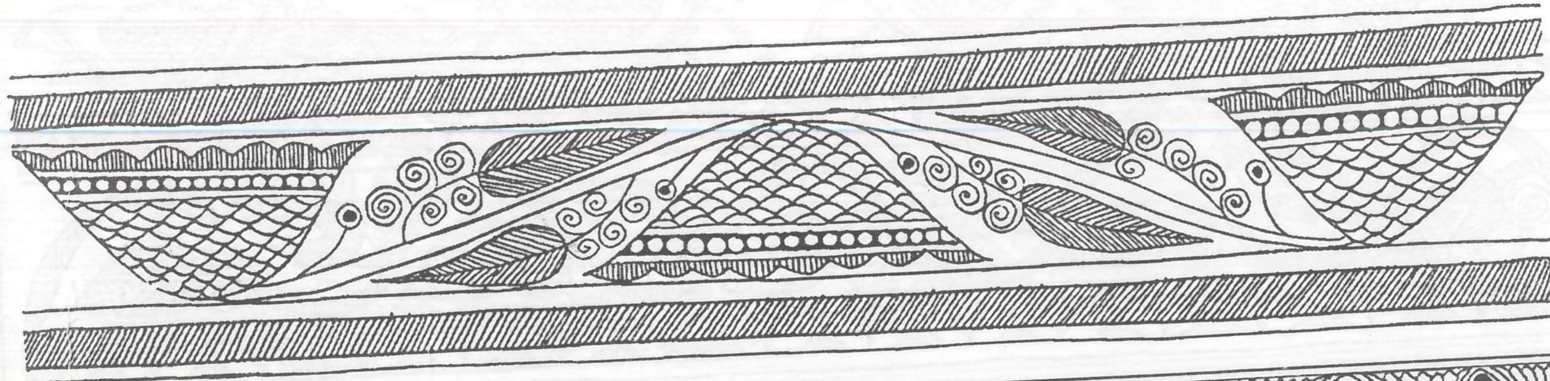
कमल दिव्यताका प्रतीक है।

सुगंधिमें सनी कमनीयता और लालित्य कमलके प्राकृतिक गुण हैं। भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन, समस्त वाङ्मय और कलाओंमें इसके प्रशस्त उल्लेख हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदासने **श्रीरामचरित मानस महाकाव्यमें तीन सौ बावन** बार कमल उपमानका प्रयोग किया है।

तुलसीदासजीने अपने आराध्य श्रीराम और उनकी प्रिया सीताजीके समस्त अंगोंकी तुलना कभी नील कमलसे तो कभी रक्त कमलसे की है —

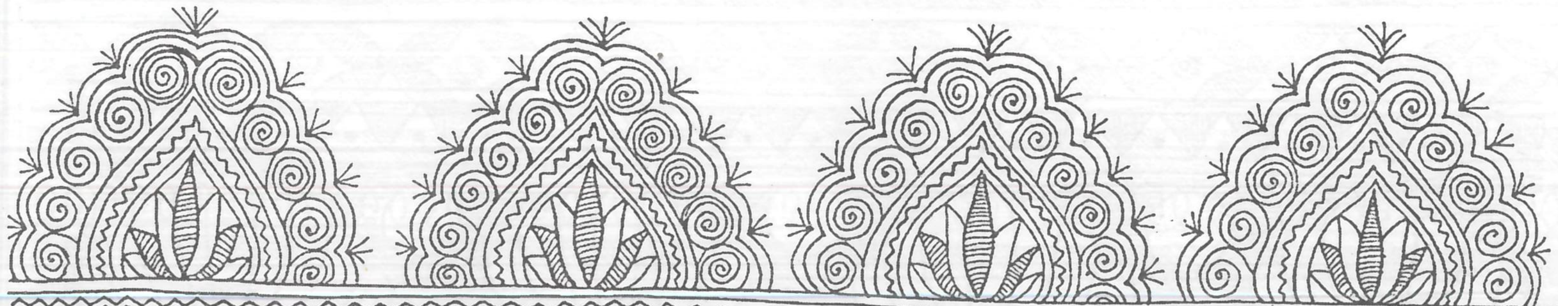
"जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनाबउँ। जासु कृपा निरमल मति पाबउँ॥"

अपने महाकाव्यकी सफलताके लिए सीताजीकी स्तुति करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि राजा जनककी पुत्री, जगतकी माता और करुनानिधान श्रीरामचन्द्रकी प्रियतमा श्रीजानकीजीके दोनों चरण-कमलोंकी मैं स्तुति करता हूँ ताकि निर्मल बुद्धि पाऊँ और सुन्दर रचना कर सकूँ।



परम्परागत मिथिला लोकचित्रके कलाकार बहुधा त्रिदेवों और उनकी आद्याशक्तियों (अर्द्धांगिनी) के हाथ और पैर लाल रंगसे रंजित करते हैं। इसके पीछे उनकी कल्पना यह है कि देवी- देवताओंके चरण और कर- तल रक्त-कमल जैसे मनोरम हैं —

चरन कमल बलिहारी
रघुनाथ लला के....

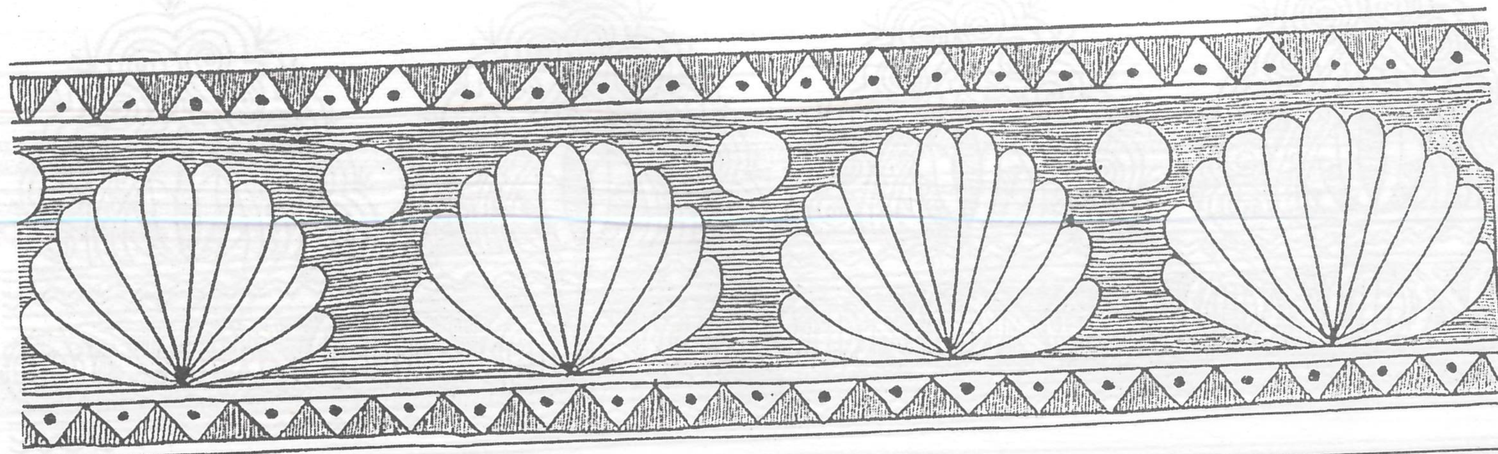


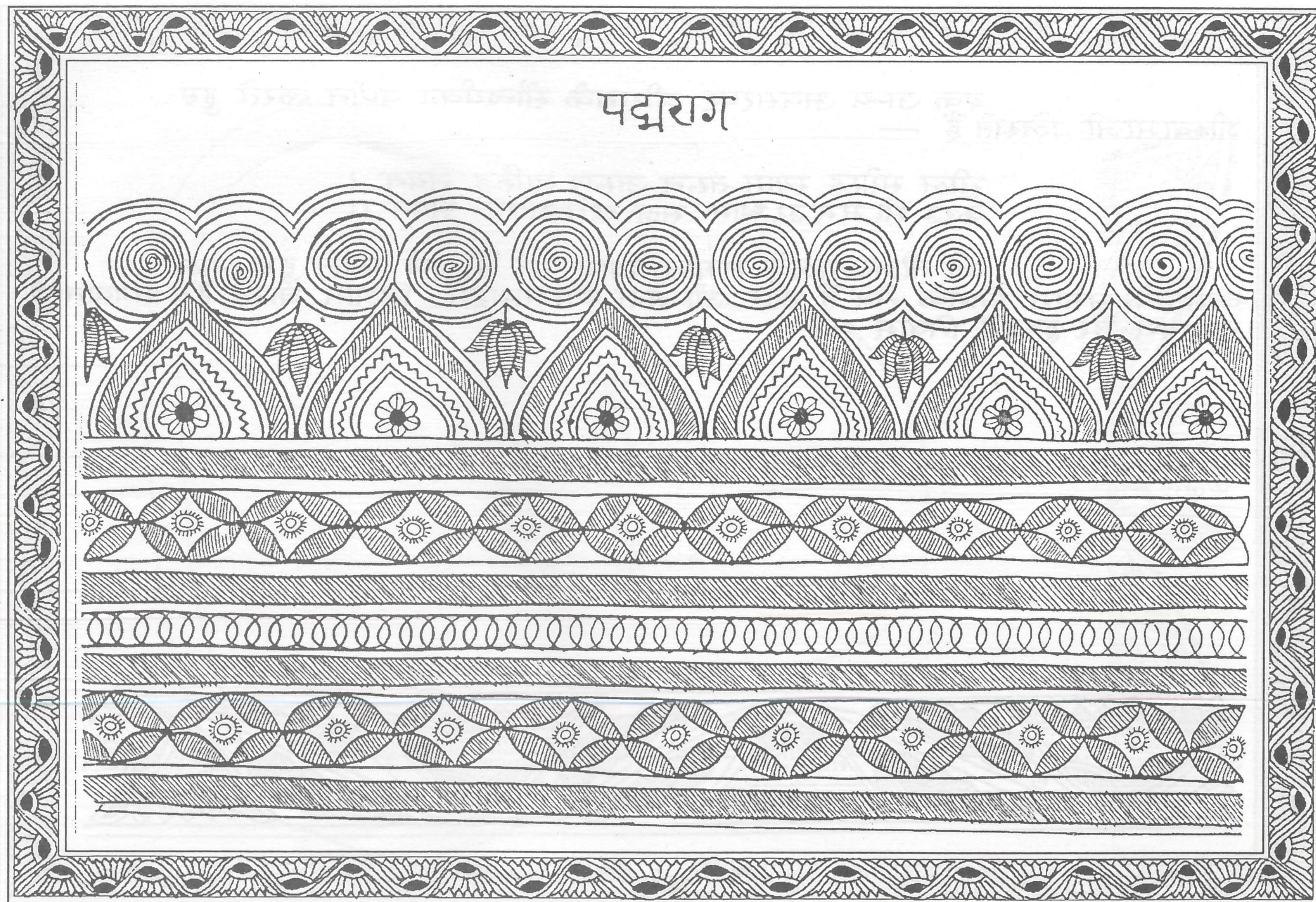


गोस्वामी तुलसीदासने जानकीजीकी नील कमल जैसी आँखोंमें करुणाका जो विराट दर्शन किया, उसका प्रसाद उन्होंने श्रीरामचरित मानसमें रखकर सर्वसुलभ किया।

"जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुणा महि छाई ॥"

(चित्रकूटमें राम-भरत मिलापके समय) जानकीजी हृदयमें धीरज धरकर, नील कमलके समान नेत्रोंमें जल भरकर, सब सासुओंसे मिलीं। उस समय पृथ्वीपर करुणा छा गई।

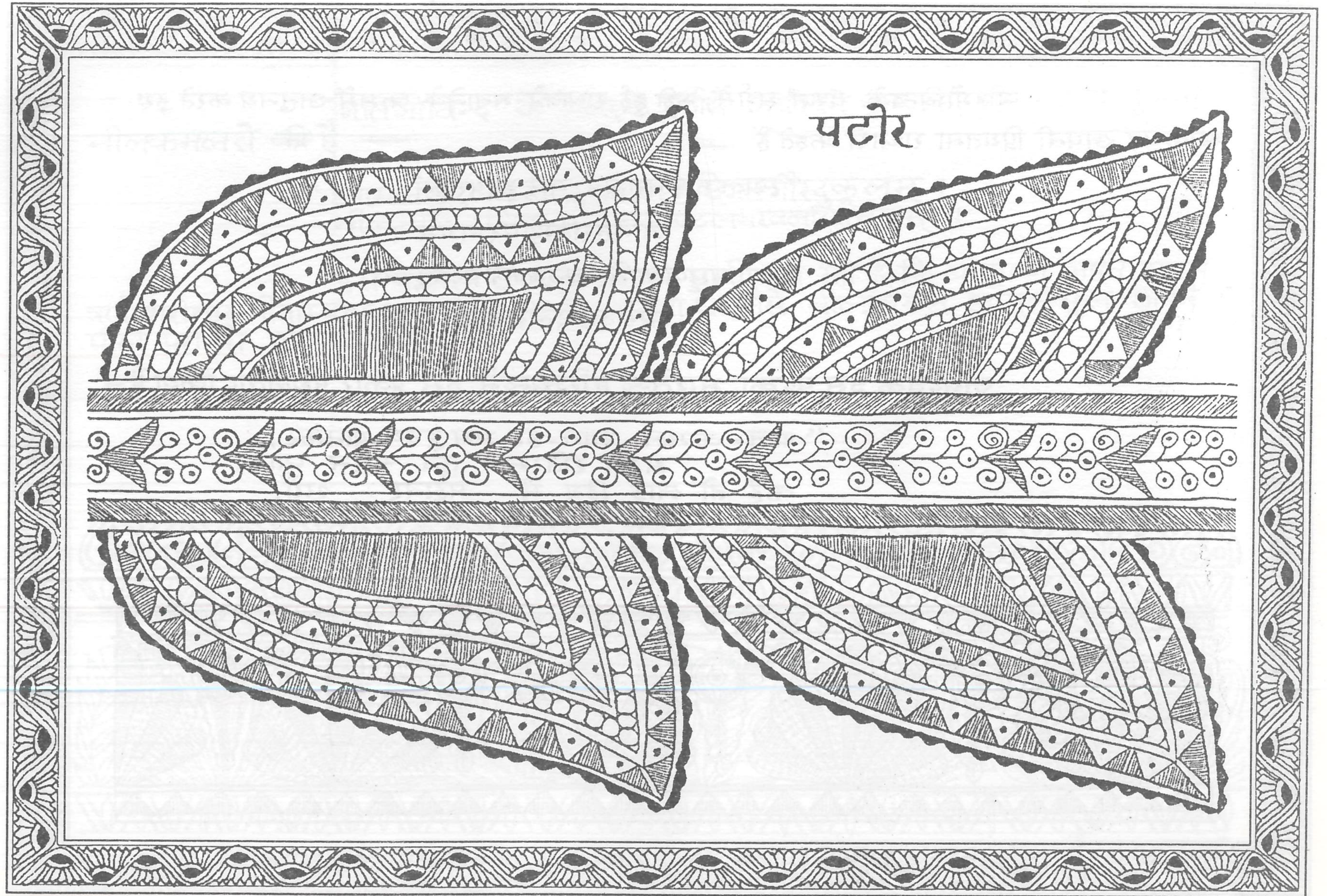



पद्मराग

एक अन्य अवसरपर श्रीरामके सौन्दर्यका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं —

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुण वारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन ।।

जो नीलकमलके समान श्याम वर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमलके समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा छीरसागरमें विश्राम करते हैं वे भगवान नारायण मेरे हृदयमें निवास करें ।

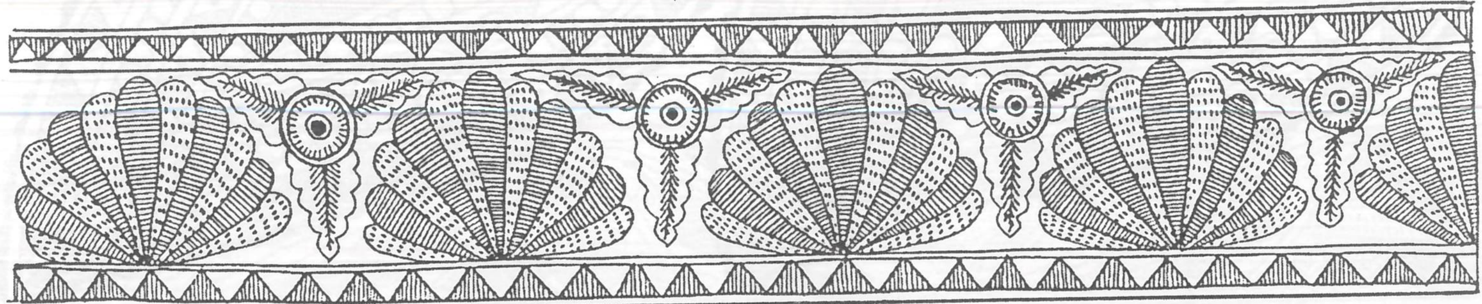

पटोर

गीतगोविन्दके दशम सर्गमें, रूठी हुई राधाको मनानेके क्रममें अनुनय करते हुए श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा राधासे कहते हैं —

"स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम ।
भण मसृणवानि! करवाणि पदपङ्कजं
सरसलसदलक्तकरागम ॥"

जयदेवके इस पदका भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इस प्रकार पद्यानुवाद किया है—

"थल-कमल-मान-हर मम हृदय प्रानकर,
सरस रतिरम्भ तुव चरन प्यारे।
कहै तो लाइ हिय मैं महावर भरौं,
हरौं जिय-ताप आनन्दवारे ॥"



"गीतगोविन्द" के ग्यारहवें सर्गमें जयदेवने कृष्णकी सुन्दरताकी तुलना नीलकमलसे की है —

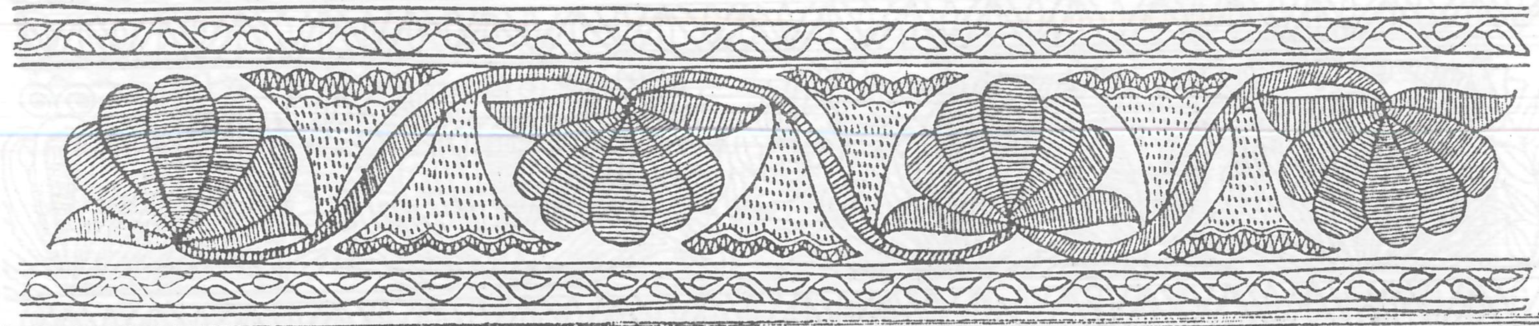
" श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥ "

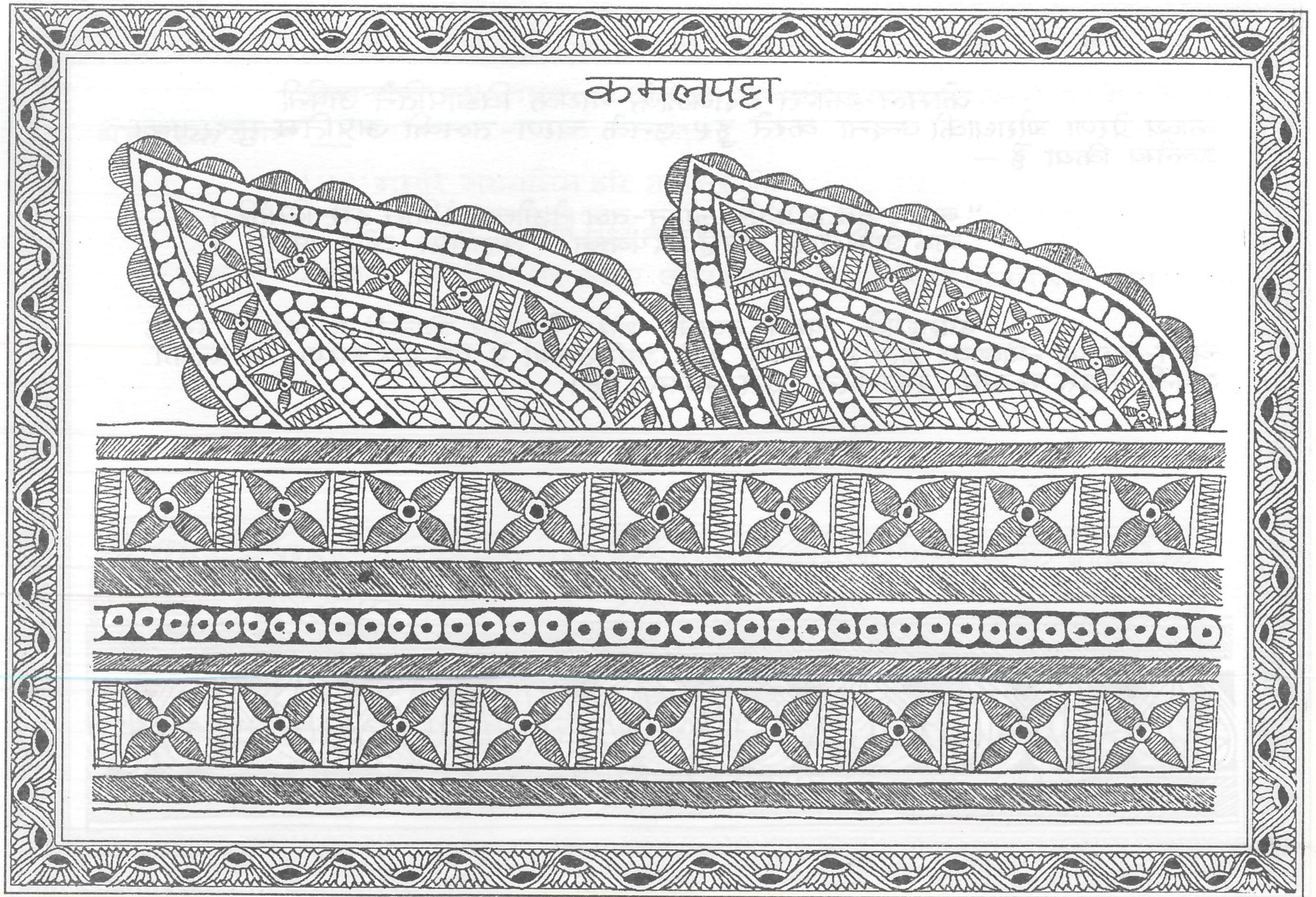
इस पद्यमें राधाको उसकी सखी बता रही है कि श्रीकृष्ण अपने श्याम वर्ण शरीरपर पीताम्बर धारण किए हुए थे; लगता था जैसे नीलकमल आमूलचूल अपने पीले परागसे परिपूर्ण हो गया हो ।

मिथिला- कोकिल विद्यापतिने अपनी नायिकाके मुखमण्डलको कमल और चन्द्रसे भी श्रेष्ठ, अतुलनीय बताया है —

" आनन देखि भान मोहि लागल जिनि सरसिज जिनि चन्दा ।
सरसिज मलिन रयनि, दिन ससधर,ई दिन रयनि सनन्दा ।। "

(नायिकाका) मुँह देखकर मुझे लगा जैसे यह कमल वा चन्द्रमा है, लेकिन कमल रातमें मलिन रहता है और चन्द्रमा दिनमें, जबकि नायिकाका मुँह सदैव प्रफुल्ल रहता है।




कमलपट्टा

कोमल-कान्त पदावलीके गायक विद्यापतिने अपनी काव्य-प्रेरणा श्रीराधाकी वन्दना करते हुए उनके चरण-तलकी अप्रतिम सुन्दरताका उल्लेख किया है —

" कत- कत लखिमि चरन-तल नेओछ्रर रंगिनि हेरि विभोरि ।
करु अभिलाख मनहि पदपंकज अहनिसि कोर अगोरि ॥"

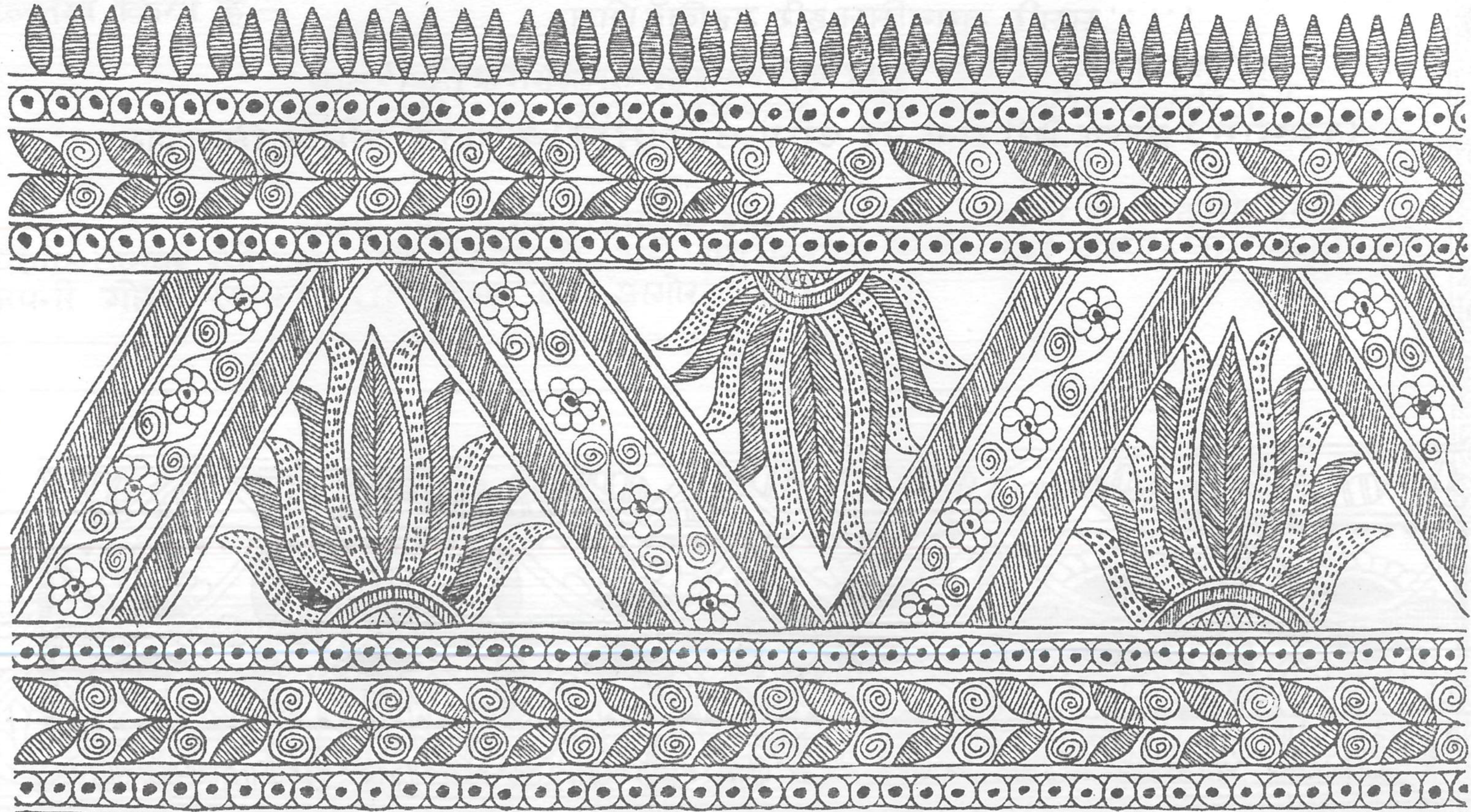
श्रीराधाके चरण-तलकी शोभा देखकर कितनी ही लक्ष्मी इनके चरण-तलपर न्योछावर होती हैं। मनमें यही अभिलाषा है कि इस चरण-कमलको अपनी गोदमें रखकर रात-दिन इसे अगोरता रहूँ।

विद्यापतिने यहाँ नायक-नायिकाके मुखकी तुलना कमलसे की है, किन्तु शृङ्गारिक ढंगसे —

'... ससरि सयनसिम हरि गहलिहुँ गिम,

मुखे मुखे कमल कमल मिलु रे।'

—(स्वप्नमें) कृष्ण मेरी सेज पर आए और (मुख) कमलसे कमल मिल गया ...


पद्मावती

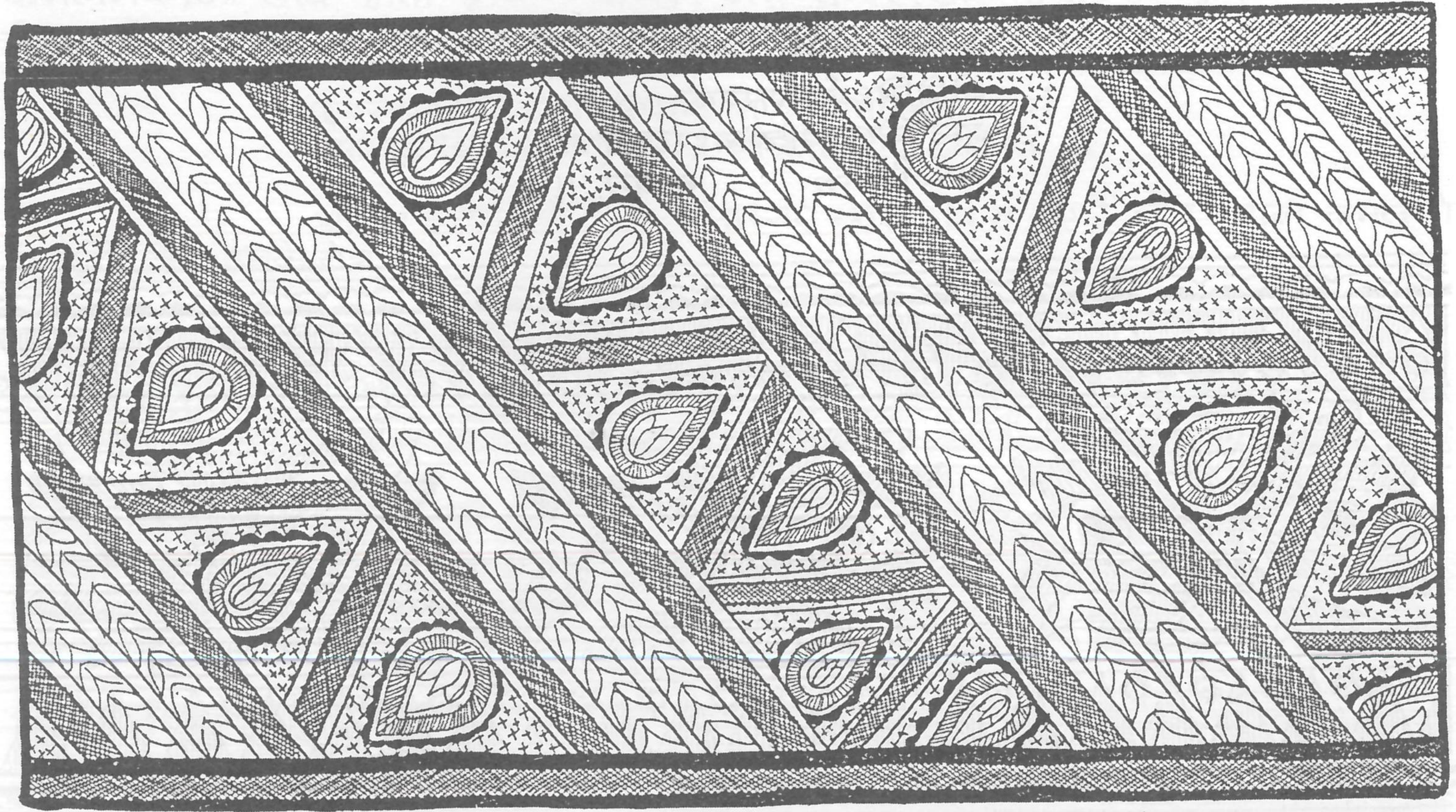
पौराणिक धर्म-परम्परामें कमलको देवी-देवताओंके आसनके रुपमें दर्शाया गया है। मिथिलाके शाक्त भक्ति-गीतोंमें भगवती दुर्गाको कमलासना कहा गया है —

सिंह ऊपर कमल राजित
ताहि ऊपर भगवती ....

सिंहकी पीठपर कमल और उसपर भगवती विराजमान हैं।

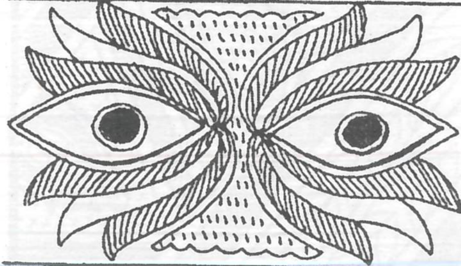
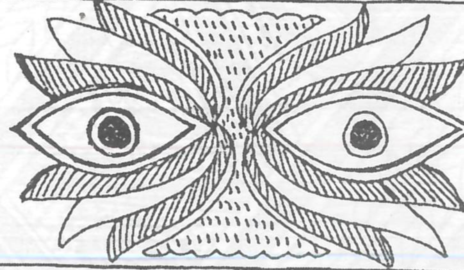
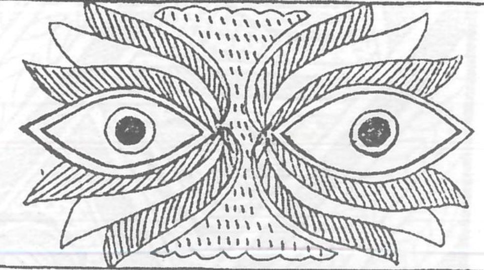
कमलका प्रयोग केवल चित्रकला ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, अन्यान्य विविध कलाओं एवं आध्यात्मिक चिन्तनमें हुआ है। कमल सुख-शांति और समृद्धिका प्रतीक है। अनेक पौराणिक और बौद्ध देवी-देवता कमलको अपने हाथमें धारण करते हैं। सुन्दरता और समृद्धिकी देवी लक्ष्मीको कमला कहा गया है।

सीतलपाटी



कमलनयन

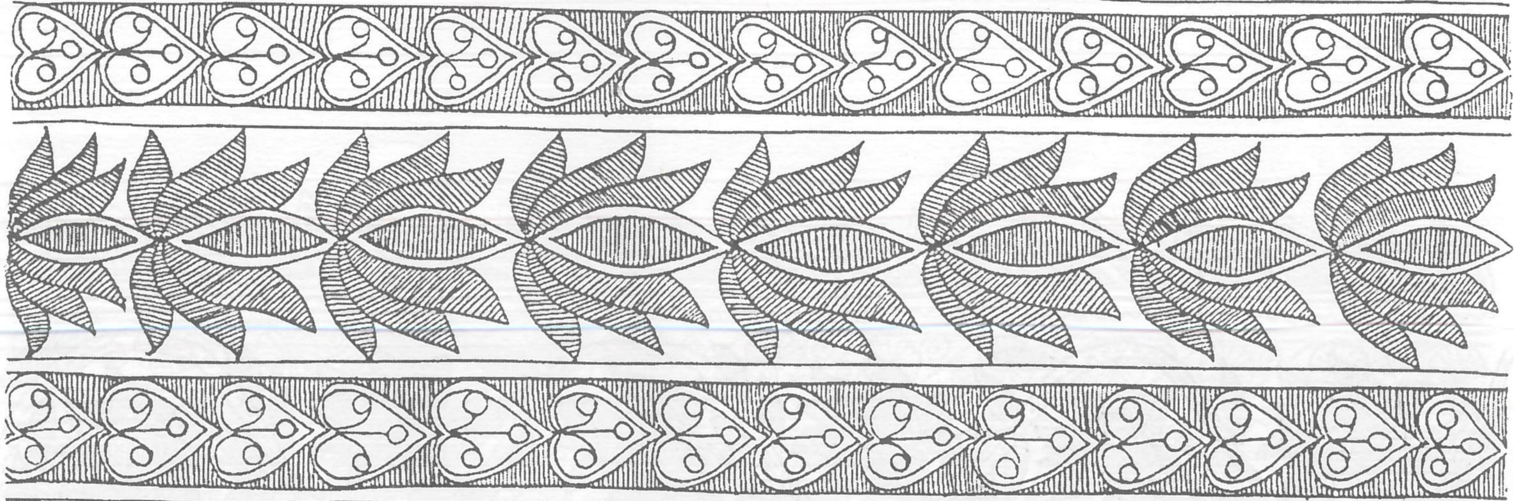
लक्ष्मीकान्तम् कमलनयनम्
योगिभिर्ध्यानगम्यम
वन्दे विष्णु भवभयहरंणम्
सर्वलोकैक नाथम् ॥

भारतीय साहित्यमें लक्ष्मीपति विष्णुको "कमलनयन" कहा गया है। भक्तिके पदों और ग्राम्य गीतोंकी नायिका राधाका प्रियतम कृष्ण कमलनयन है। कमलनयनका अर्थ होता है — कमल जैसे सुन्दर, अरुणाभ, लास्यपूर्ण नयन। गोस्वामी तुलसीदास रामका इस प्रकार ध्यान करते हैं —

रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालंकृतं ।
श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितं ।।

श्रीराम श्याम वर्ण हैं, वे पीताम्बर धारण किए हुए हैं और लाल कमलकी पंखुरियों- जैसे उनके नेत्र हैं।



राधा-कृष्णके प्रेमको 'गीतगोविन्द' के पदोंमें सानकर परोसनेवाले अमर भक्तकवि जयदेवने भी 'कमलनयन' कहकर कृष्णकी प्रार्थना की है—

"अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।
त्रिभुवनभवननिधान जय जयदेव हरे॥"

हे स्वच्छ कमलदलके समान नेत्रवाले! भक्तजनोंके रक्षक!
त्रैलोक्यकी समुत्पत्तिके कारणस्वरूप भगवन! आपकी जय हो, जय हो!



"गीतगोविन्द" के तृतीय सर्गमें, कृष्णको अन्य गोप-बालाओंसे घिरा देखकर राधा संतप्त होकर चली गयी। राधाकी मनःस्थितिका अनुमानकर कृष्ण कहते हैं —

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु कोपभरेण।
शोणपद्ममिवोपरिभ्रमताकुलं भ्रमरेण॥

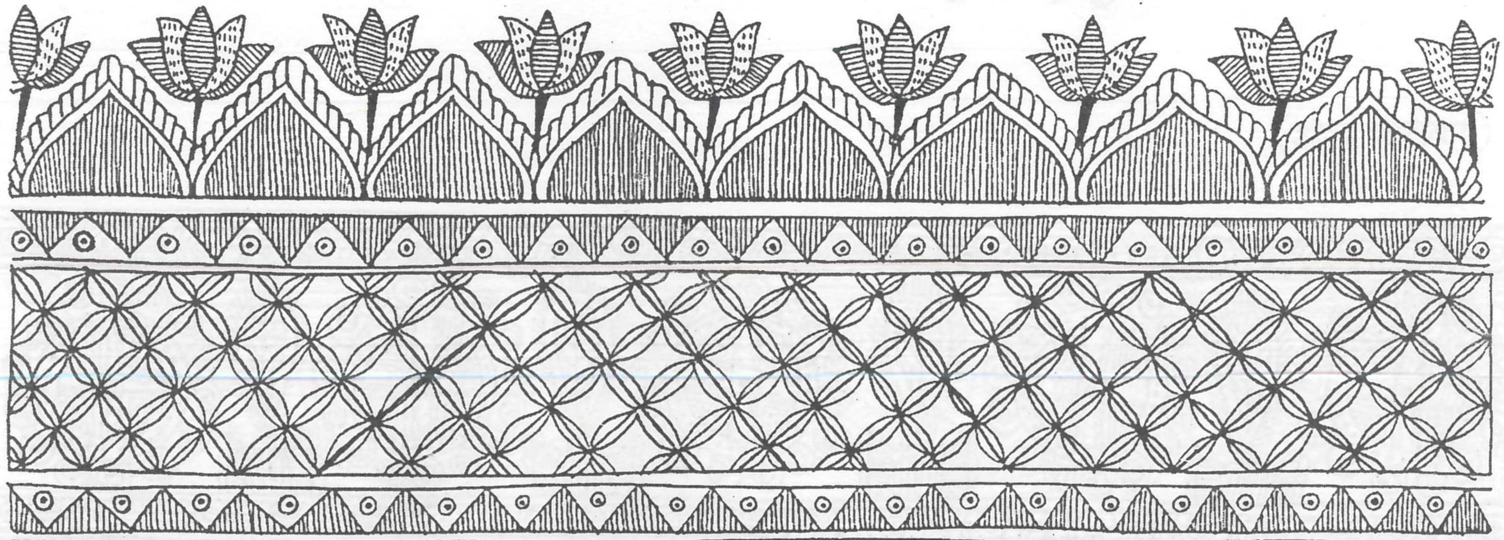
"जैसे मँडराते हुए काले भँवरोंसे व्याकुल लाल कमल क्षुब्ध हो जाता है, उसी प्रकार मेरे कृत्यसे क्षुब्ध उस राधाकी टेढ़ी भौंहोंसे युक्त उसके मुख-कमलकी मुझे इस समय याद आ रही है। हाय! वह अनादृत राधा कुपित-सी होकर यहाँसे चली गयी।"

पद्मिनी - प्राचीन कोकशास्त्रकारोंने कामशास्त्रीय विश्लेषणके आधारपर स्त्रियोंकी चार कोटि निश्चित की है। कमलकी अतुलनीय कमनीयताके कारण 'पद्मिनी' को सर्वश्रेष्ठ कोटिकी स्त्री कहा गया है। इस कोटिकी स्त्रियोंका लावण्य पद्म- तुल्य होता है और उसके शरीरसे कमलकी सुगंधि निकलती रहती है। सीता, राधा, लक्ष्मी आदि श्रेष्ठ नारी- चरित्रोंको पद्मिनी कोटिकी स्त्री माना गया है।

कमल-प्रहेलिका

बाँस करे ठाँय-ठाँय
नदी गुँगुआय,
कमलके फूल दोनों
अलगा जाय....

क्या हुआ? पयोधर....



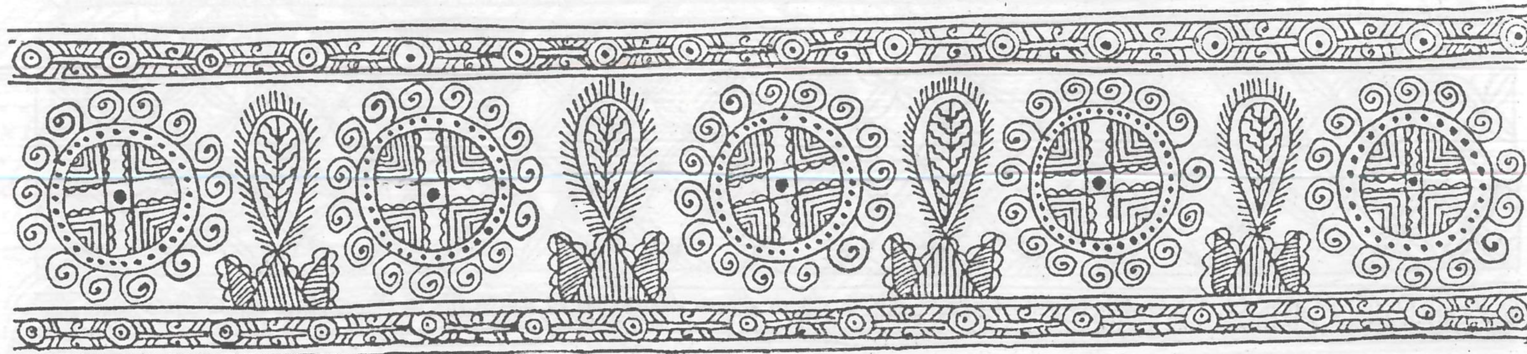
पुरइनकोर

पुरइन कहते हैं कमलके पत्तेको।

कमलासनपर बैठी भगवतीकी 'पुरइन' पादासनी होती है। मिथिला चित्रकलामें पुरइन एक दिव्य पात्र, अर्घ्यके पात्र और देवताओंके निमित्त स्थानके रूपमें चित्रित होते हैं।

भूमि-चित्रणके समस्त अरिपनोंमें पुरइन अवश्य होते हैं।

पुरइन प्रकृतिका द्योतक है, स्त्रीका सकल प्रतीक है।



"आँजुर भरि रूप दियऽ
मुट्ठी भरि गंध,
चुटकी भरि भाव दी तँ
सोनमे सुगन्ध।
आँजुर भरि रूप दियऽ॥"

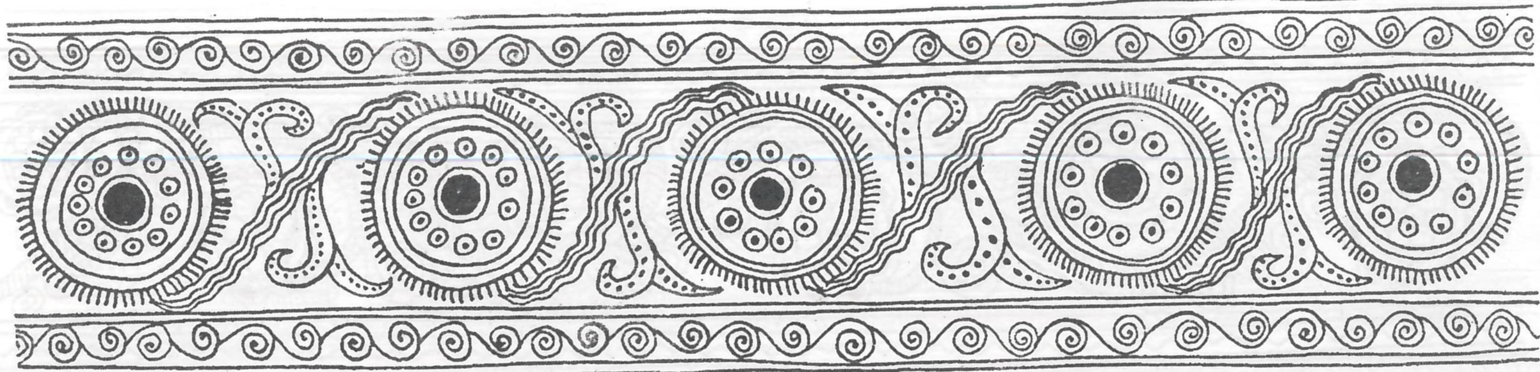
(इन्द्र नारायण)



"गीतगोविन्द" के रचयिता जयदेव ताजे पुरइनके पत्तेसे
राधा - कृष्णकी अभिसार - शय्या तैयार करते हैं —

सजलनलिनीदलशीतलशयने
हरिमवलोकय सफलय नयने ।

मानिनी राधाको उसकी सखी समझाते हुए कहती है,
हे सखि राधे! जलकणोंसे युक्त ताजे पुरइन पत्तोंसे शय्या तैयार करके तुम्हारी प्रतीक्षामें व्याकुल हो रहे श्रीहरिको देखकर तुम अपने नेत्रोंको सफल बनाओ।



प्रकृति और शृंगारके अमर कवि विद्यापतिने पुरइनको
विरह-विदग्धा प्रेमिकाके पत्र-लेखनकी सामग्रीके रुपमें प्रस्तुत किया है —

"कुसुमित कानन कुंज बसी
नयनक काजर घोरि मसी।

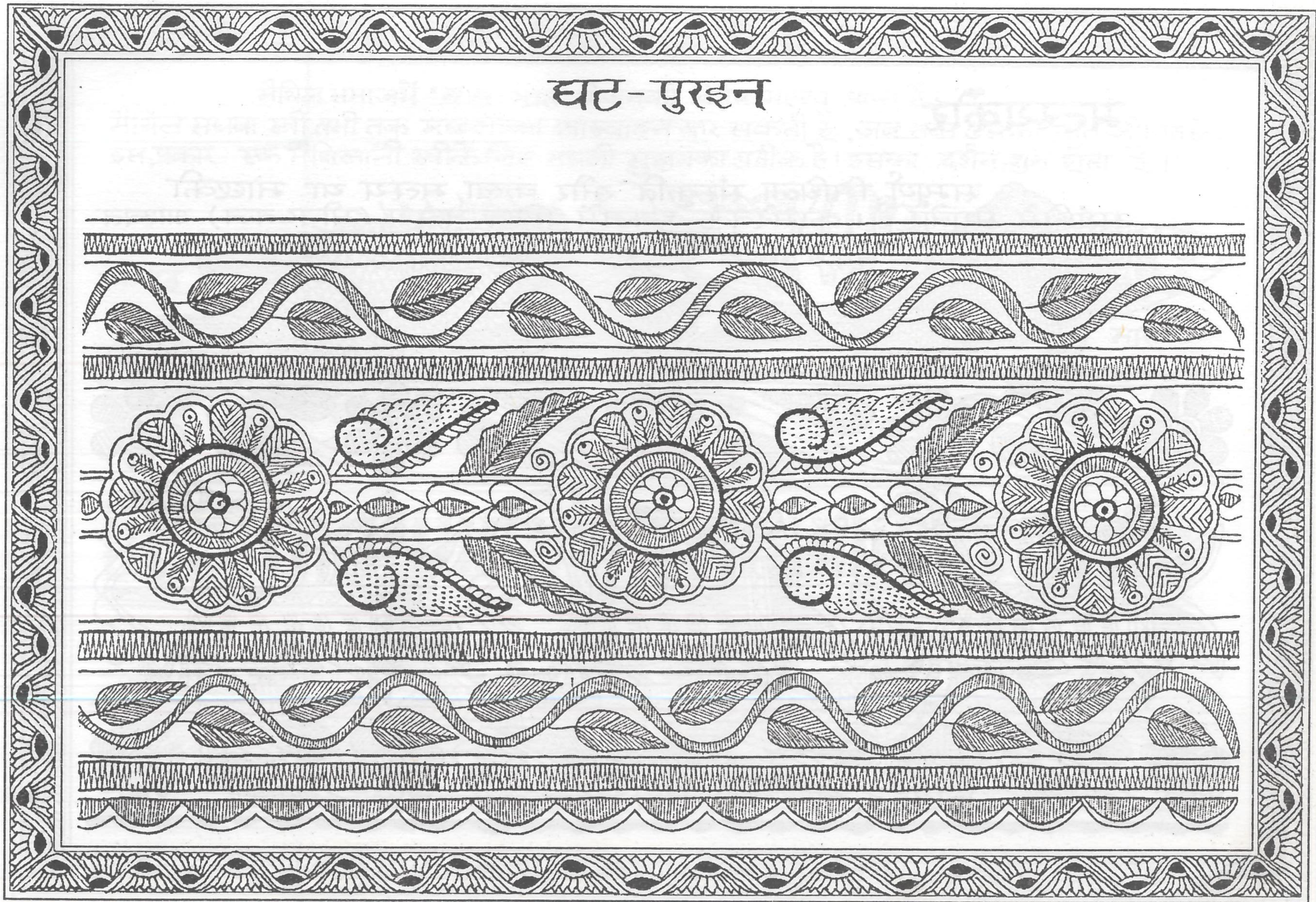
नखसँ लिखलि नलिनि-दल पात
लीखि पठाओल आखर सात।"

वसंतका आगमन हो गया है। समस्त वनांचल फूलों और मंजरियोंसे सुरभित हो उठा है। ऐसे समयमें अपने प्रियतमसे दूर विरह-कातर प्रेमिकाने उद्वेगातिरेकमें पत्र लिखनेकी सोची किन्तु 'कुसुमित कानन' में कहाँ मिले कागज, कलम और स्याही? आखिर पुरइनके कोमल पत्तेको कागज बनाया, अपनी आँखोंकी कोरसे काढ़कर निकाले गए काजलको स्याही बनाया और अपनी अंगुलिके नखको कलमकी निब बनाकर प्रेयसीने पत्र लिखा — सात अक्षरोंका प्रेमपत्र!

सद्यःस्नाता नायिकाका चित्रण करते हुए विद्यापति पुरइन की नयी छवि देखकर अचम्भित हैं —

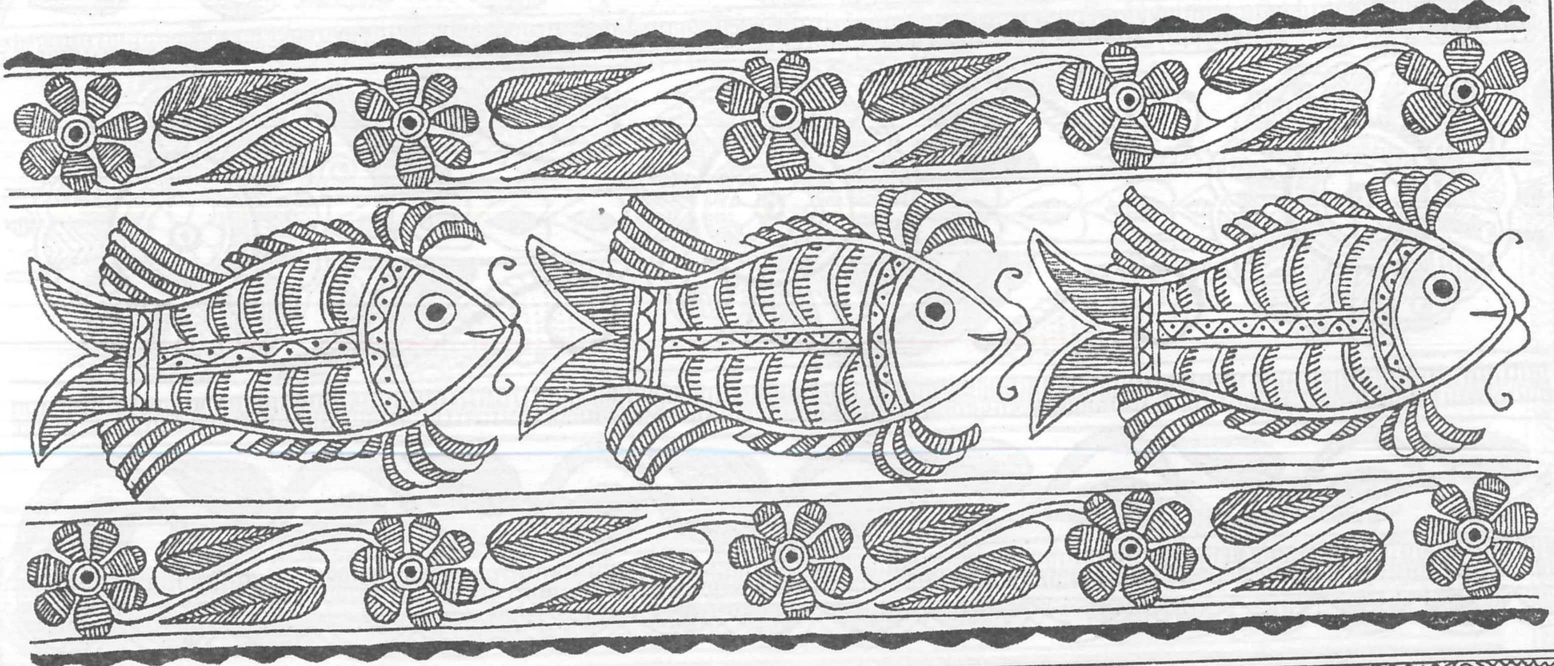
"तीतल अलक बदन अति सोभा, अलिकुल कमल बेढ़ल मधु लोभा।
नीर निरंजन लोचन राता, सिंदुर मंडित जनि पंकज-पाता॥"

स्नान कर रही सुन्दरीके भींगे बाल मुखमण्डलपर छितराए हुए हैं; ऐसा लगता है जैसे मधुके लोभसे भौंरोंके झुंडने कमलको घेर रखा हो। पानीमें डुबकी देकर नहानेके कारण उस सुन्दरीकी आँखें अंजनहीन और लाल हो गई हैं; ऐसा लगता है जैसे कमलके पत्ते (पुरइन) सिंदूरसे रंजित हो गए हों।


घट-पुरइन

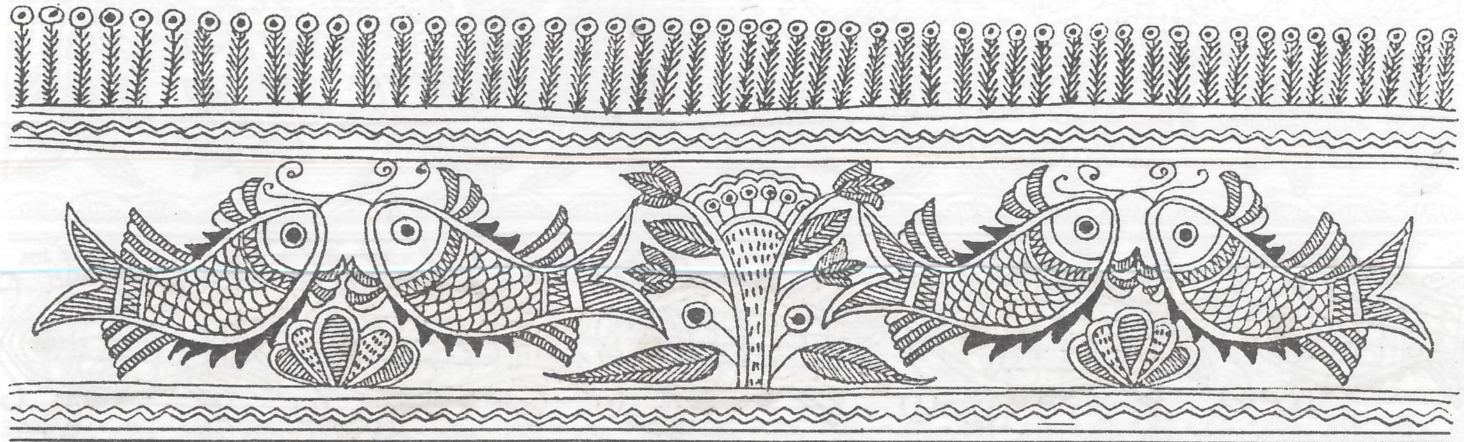
मत्स्यकोर

सम्पूर्ण मिथिला संस्कृति और कला मत्स्य या माछकी सुगंधिसे सराबोर है। कामदेवके ध्वजमें स्थित मत्स्य (मीनध्वज) शाश्वत प्रेमका प्रतीक है।



मैथिल समाजमें 'माछ-भात' भोजनको विशेष महत्व प्राप्त है।
मैथिल सधवा स्त्री तभी तक मछलीका आस्वादन कर सकती है, जब तक उसका पति जीवित हो।
इस प्रकार एक मैथिलानी स्त्रीके लिए मछली सुहागका प्रतीक है। इसका दर्शन शुभ होता है।

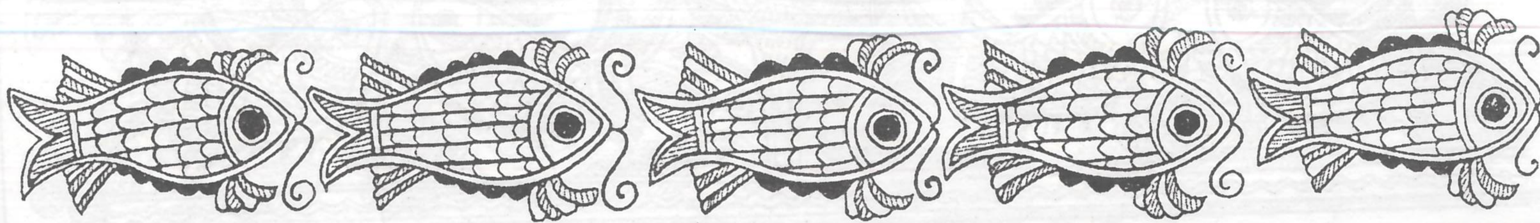




मैथिल समाजमें भिन्न-भिन्न मछलियाँ सामाजिक स्तरकी पहचानके रूपमें भी ख्यात हैं —

टेंगरा-पोठी चाल दिए
रोहू सिर पर दण्ड !

मिथिलाकी मछलियोंमें टेंगरा-पोठी-चन्ना-खेसरा-मरबा-झिंगा-गरइ-गरचुन्नी जैसी छोटी मछलियोंका वही स्थान है जो किसी सामन्ती समाजमें दलित वर्गोंकी। इसके विपरीत रोहू मछली अभिजात्य वर्गका प्रतीक है। जिस तालाबमें रोहूके साथ टेंगरा-पोठी भी रहती हैं और धूपकी चिलचिलाहटसे ये मछलियाँ उछल-कूद मचाने लगती हैं तो यह देखकर मछुआरे जाल फेकते हैं और उस जालमें नाहक फँस जाती हैं बड़ी मछलियाँ — रोहू के सिर दण्ड !

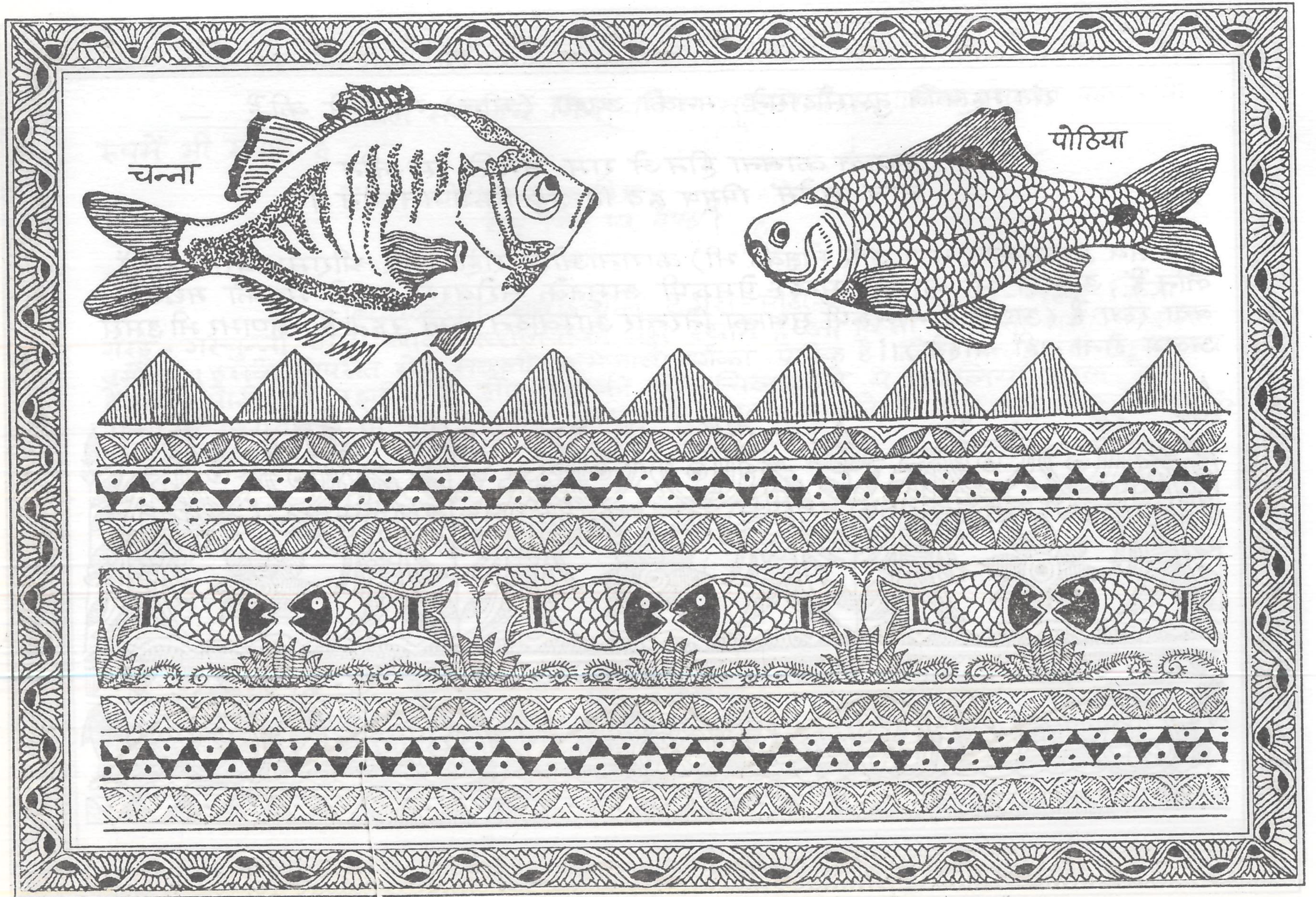


संत महाकवि तुलसीदासने मनकी उपमा (मीन) मछलीसे की है —

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥

'जो सब प्रकारकी (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओंसे रहित और श्रीरामभक्तिके रसमें लीन हैं, उन्होंने भी नामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतके सरोवरमें अपने मनको मछली बना रखा है (अर्थात वे नामरूपी सुधाका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, क्षणभर भी उससे अलग होना नहीं चाहते)।'

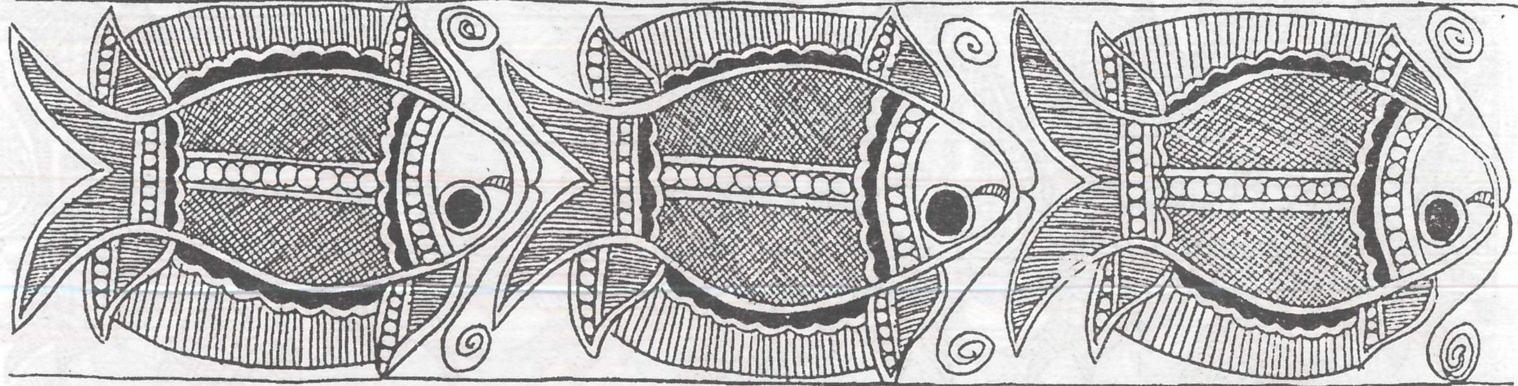



चन्ना
पोठिया

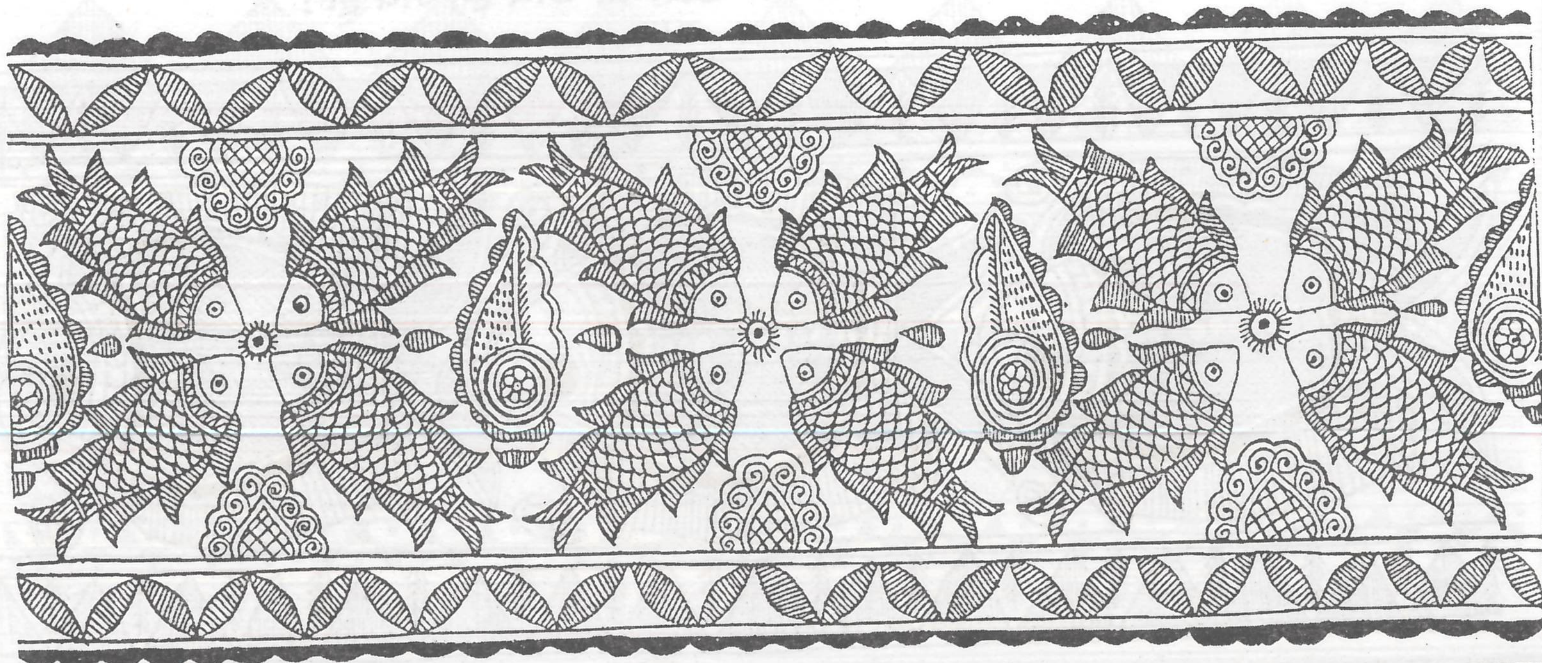
मत्स्यरूप विष्णुका गुणगान करते हुए महाकवि जयदेव कहते हैं —

" प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम ।
केशव धृतमीनशरीर
जय जगदीश हरे !!"

हे मत्स्यावतारधारी जगदीश ! आपने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार किया और अनायास पोतका कार्य किया । आपकी जय हो, जय हो !



विष्णुका प्रथम अवतार मत्स्यरूप होनेके कारण मछली
वैष्णव और अवैष्णव दोनों मतावलम्बियोंमें भिन्न रूपसे आदरनीय है।



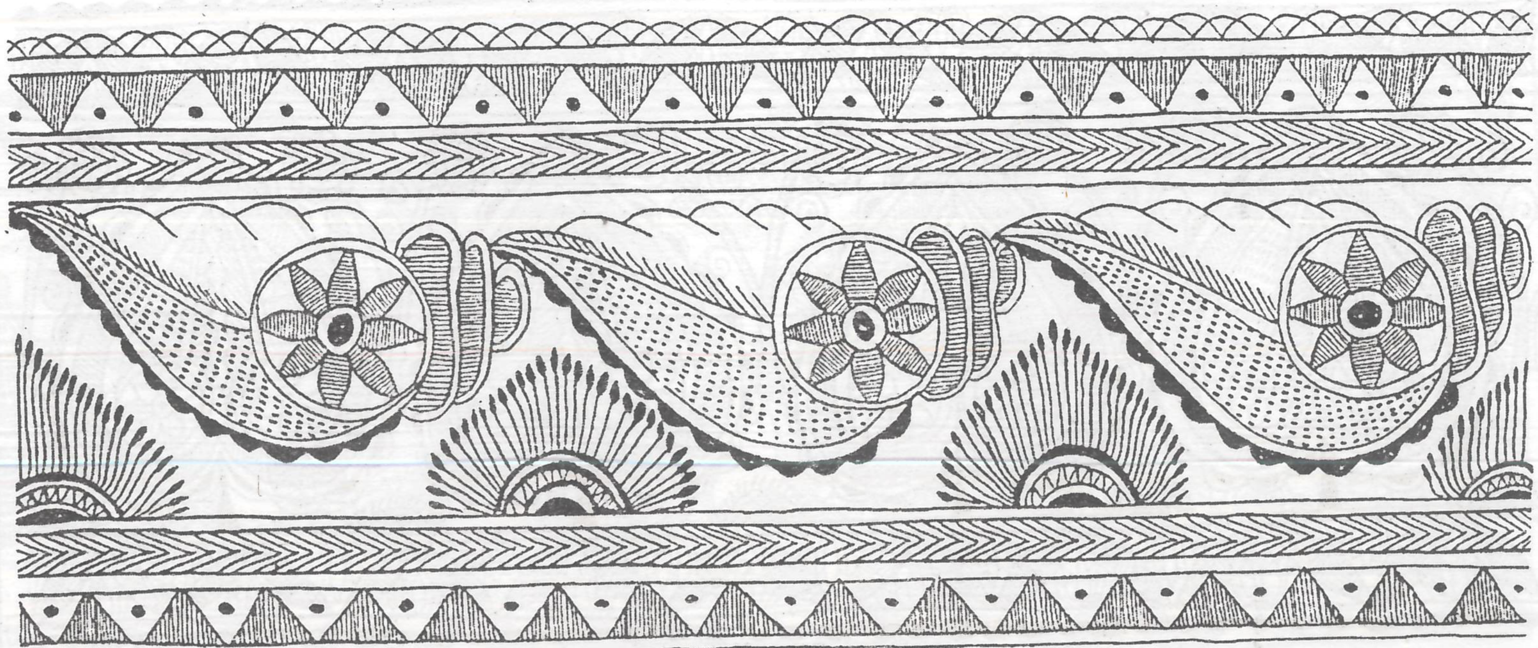
शंखकोर

मिथिलाकी गुणवती स्त्रियाँ समुद्रकी बेटी लक्ष्मीको अपनी बहन और उनके भाई शंखको श्रीहरि विष्णुके प्रिय सालेके रूपमें मानती हैं।

शंख अटल निश्चय, सम्पदा, शक्ति और प्रारम्भका प्रतीक है।



समुद्रकी दो बेटियाँ थीं और दो बेटे। बड़ी बेटी परम सुन्दरी और सुलक्षणी थी। उसका नाम लक्ष्मी पड़ा और कुरूप-झगड़ालू बेटीको लोग अलक्ष्मी कहने लगे।



समुद्रके दो बेटोंमें बड़ा बेटा शंख मिहनती, गुणवान और प्रतापी था जबकि छोटा बेटा कुविचारी और विध्वंशक था। उसका नाम हड़ाशंख पड़ा। अपने गुण, स्वभाव और सुप्रवृत्तिके कारण लक्ष्मी और शंखमें बहुत मेल था, लेकिन दुष्ट स्वभाववाले अलक्ष्मी और हड़ाशंख उन्हें हमेशा तंग करते थे।

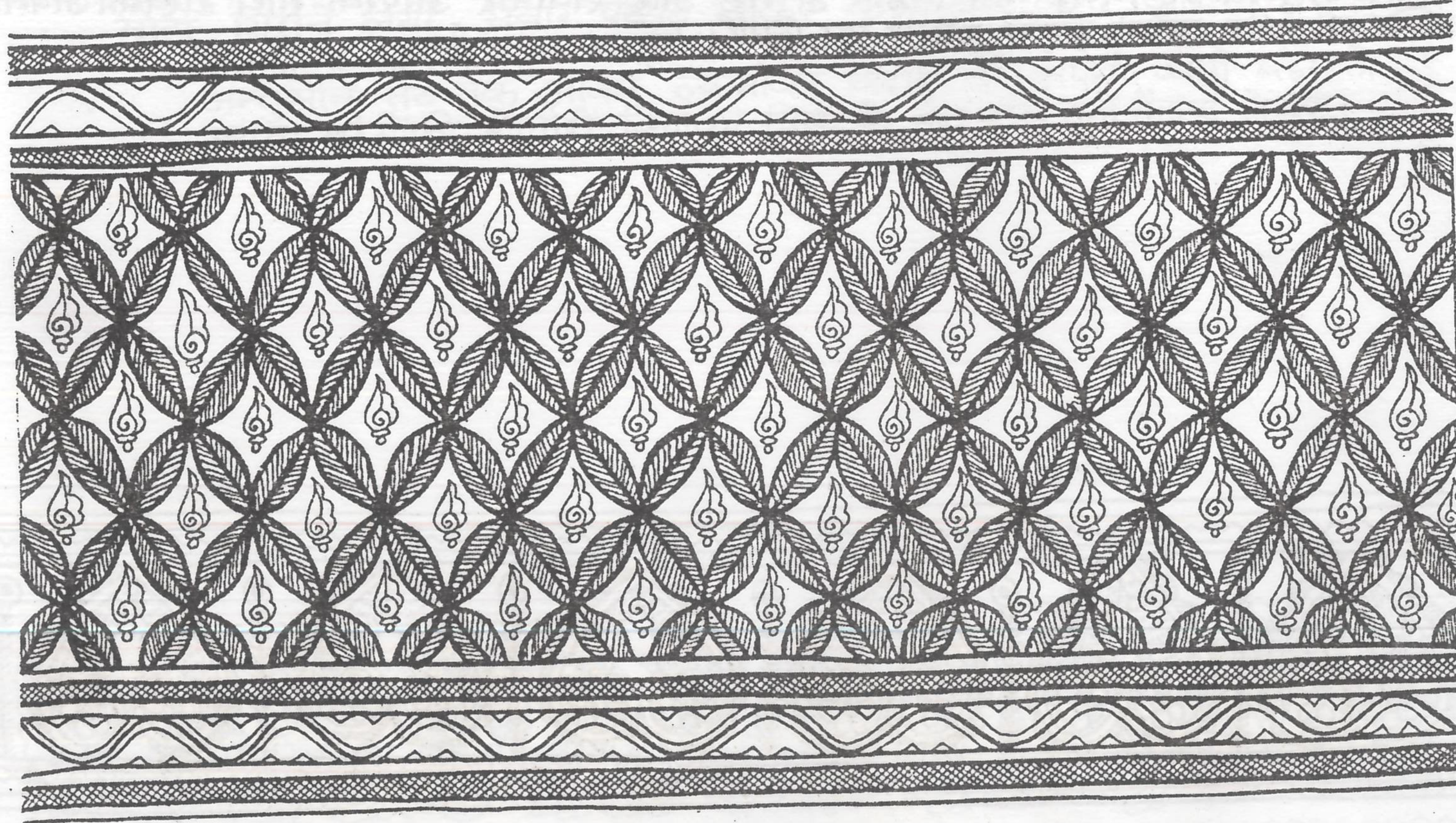
एक बार हड़ाशंखने लोभमें पड़कर दानवकुलके अति धनाढ्य किन्तु कुरूप और दुर्व्यसनी कुबेरके हाथ लक्ष्मीको बेच दिया। बहुत मुश्किलसे शंखने कुबेरके भोग- महलसे लक्ष्मीको मुक्त कराया और विष्णुके आग्रहको मानकर लक्ष्मीका विवाह विष्णुसे कराया।

विवाहके बाद विष्णु जब विदाई कराकर लक्ष्मीको वैकुण्ठ ले जाने लगे तब अपनी प्रिय सखीसे विछोहकी बात सोचकर समुद्रके सभी प्राणी दुःखी हो गए। मछलियाँ धाड़ें मारकर रोने लगीं, सीपियाँ सुबक-सुबककर मोती गिराने लगीं, सेंवार पछाड़ खाकर कुम्हलाने लगीं और जनम-जनमकी संगबहिना लहरोंने बहना छोड़ दिया। आखिर समुद्र-समाजके सभी जीव-जन्तुओंने तट तक आकर लक्ष्मीको विदाई दी। अपनी प्यारी बहनको उत्ताल तरंगोंकी डोलीमें बिठाकर विष्णुके संग शंख उन्हें वैकुण्ठ ले गया।

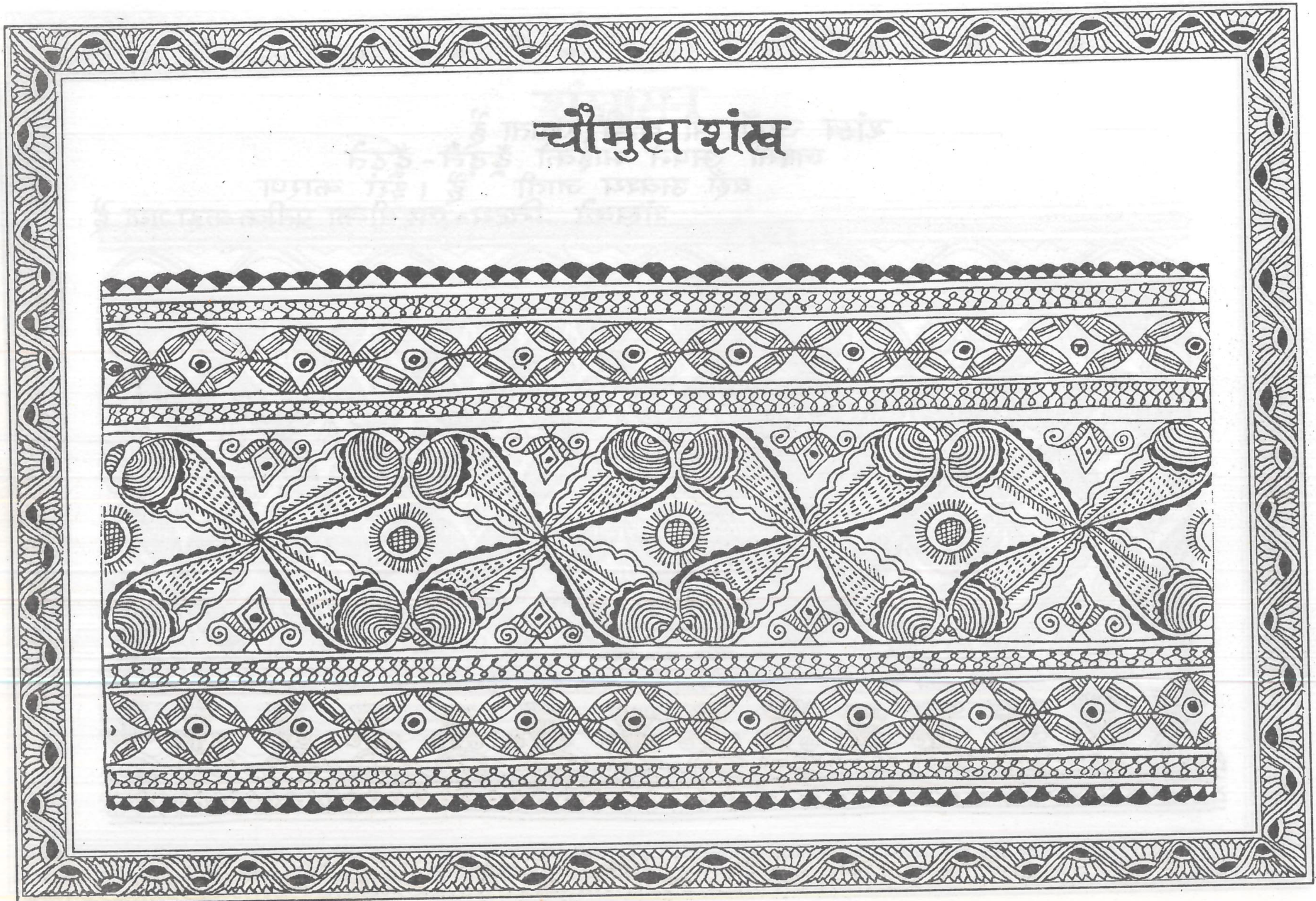


लक्ष्मीको उसके ससुराल वैकुण्ठ पहुँचाकर शंख वापस नहीं लौटा बल्कि प्रेमवश अपनी बहन और बहनोईके मोहमें ऐसे बँध गया कि उसे धन-सम्पदाके अनन्त अक्षय भाण्डारवाले समुद्रके राज्यका लाभ भी नहीं डिगा सका। भाई-बहनके अद्भुत प्रेमका अनुभवकर विष्णु भाव-विह्वल हो गए और सर्वोपरि आदरके साथ शंखको अपनी शक्ति बनाकर अपने हाथमें धारण कर लिया।

शंखासन



शंख जहाँ भी कहीं जाता है
लक्ष्मी अपने भाईको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते
वहाँ अवश्य जाती है। इसी कारण
शंखको नित्य-लक्ष्मीका प्रतीक कहा गया है।


चौमुख शंख

नैमिषारण्यमें तपस्या-लीन मनु-शतरूपाको श्रीरामने दर्शन दिए —

सरद मयंक बदन छबि सींवा । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा । बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥

— श्रीरामचरितमानस —

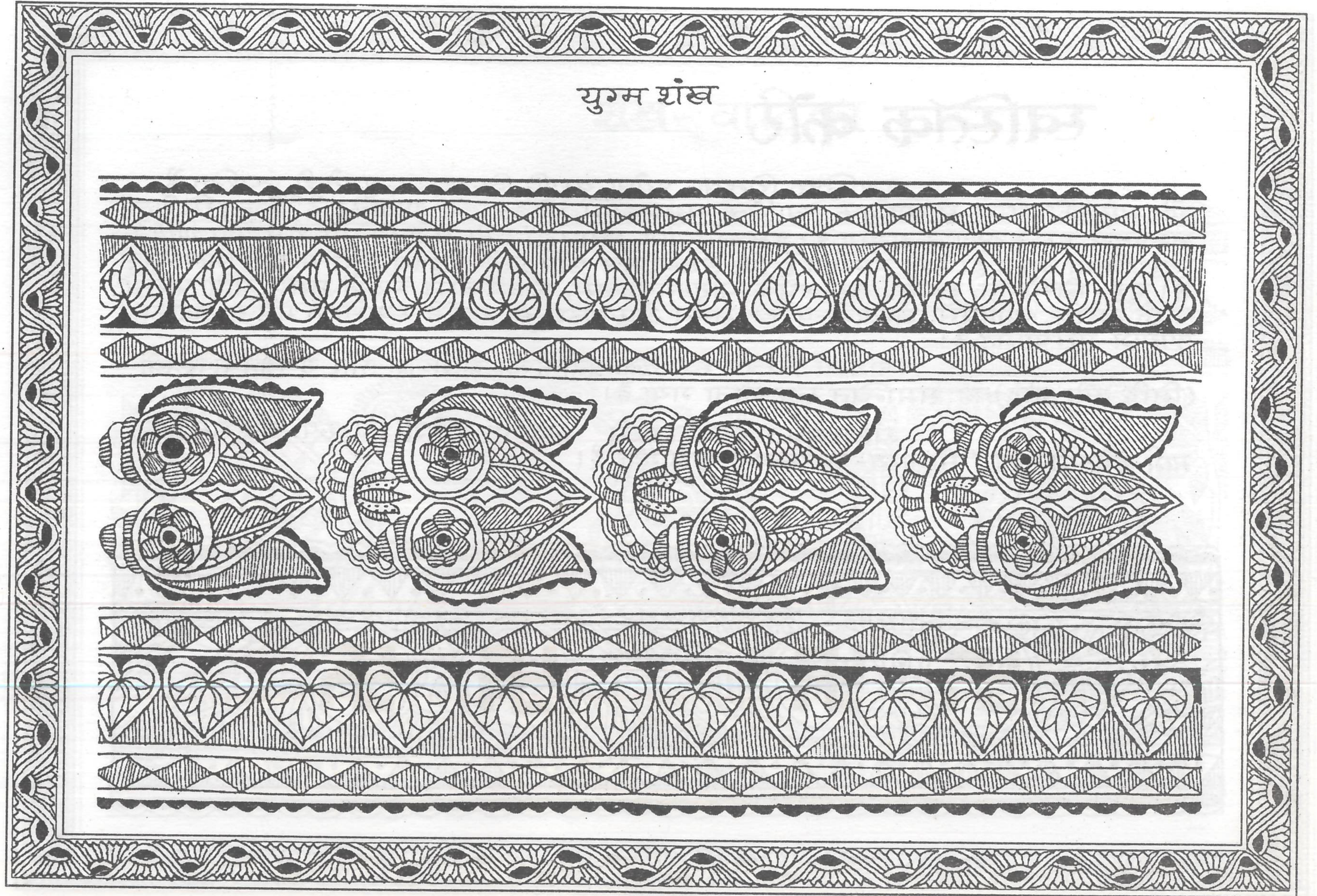
"श्रीरामका मुख शरद-चन्द्रके समान छविकी सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुन्दर थे, गला शङ्खके समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतारवाला) था। लाल ओठ, दाँत और नाक अत्यन्त सुन्दर थे; हँसी चन्द्रमाकी किरणावलीको लजानेवाली थी।"



कहते हैं, शंख-ध्वनि विपत्तिका नाशक है —

शंख बाजे, बला भागे ....



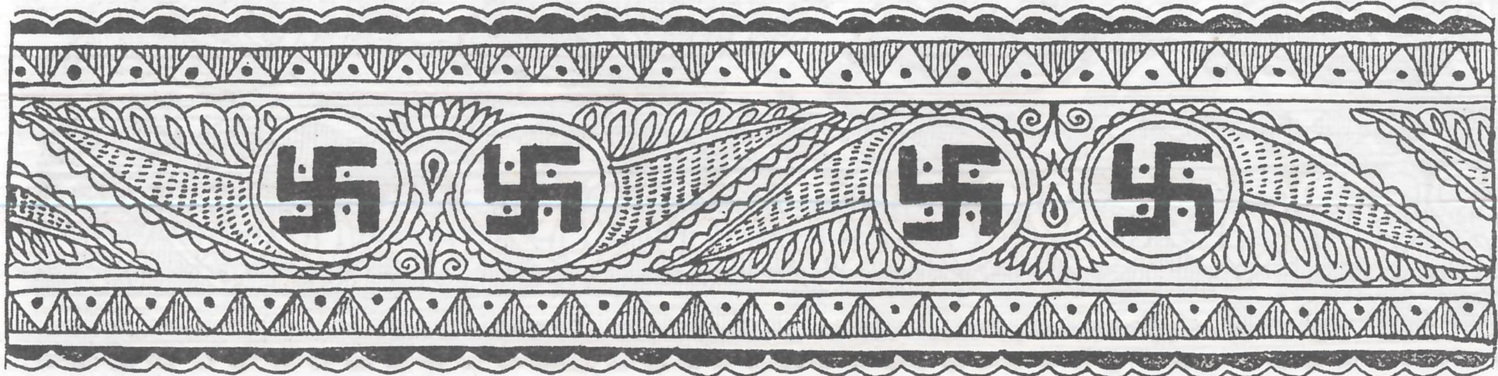

युग्म शंख

स्वस्तिक कोर

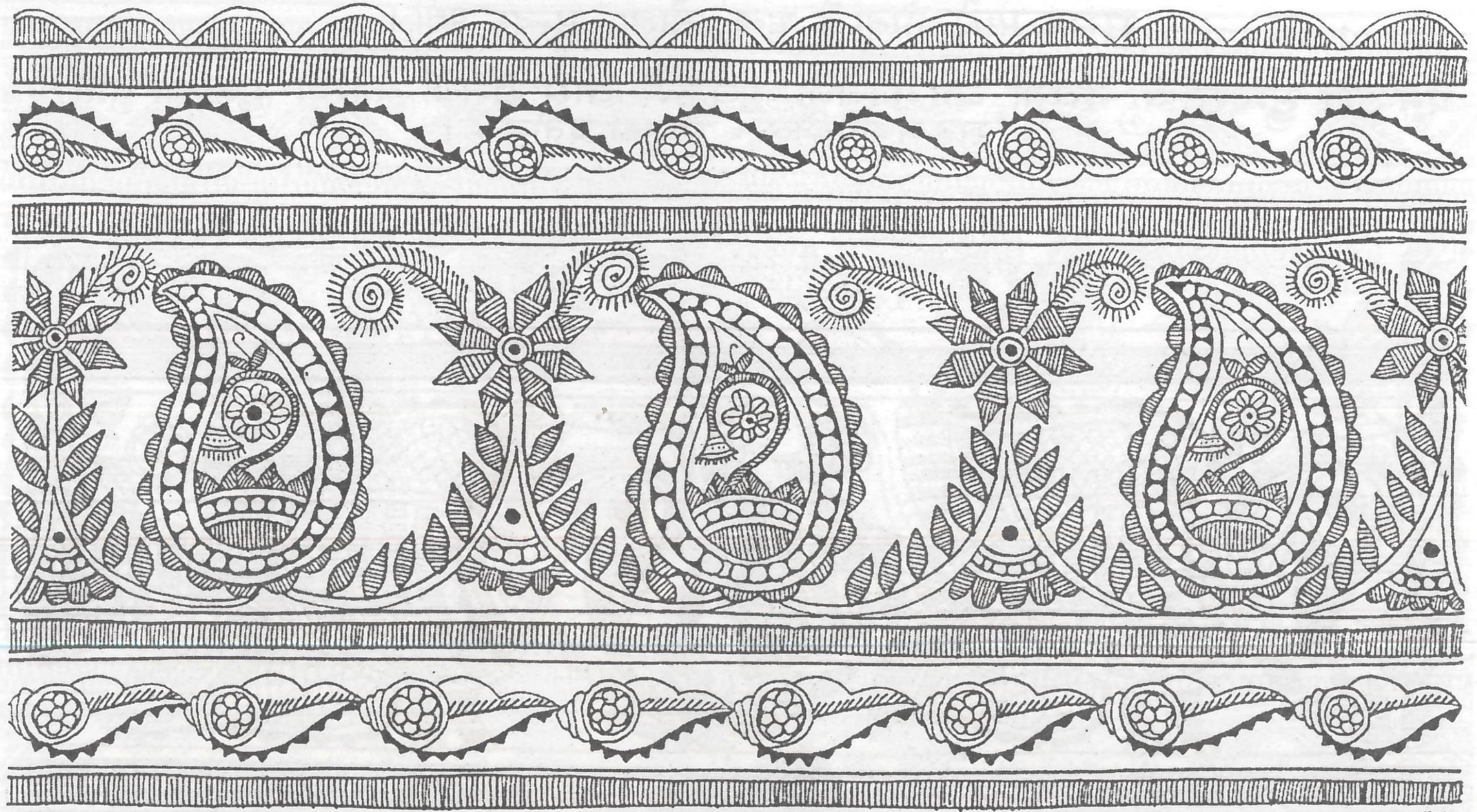
स्वस्तिक चिन्हका प्रयोग यद्यपि कि हड़प्पा-युगसे ही प्रचलित है और भारतकी अन्य सामाजिक-धार्मिक परम्पराओंमें भी अद्यतन उपलब्ध है, किन्तु मिथिला समाजमें इसके व्यापक प्रयोग हैं। इसका प्रयोग मंत्ररुपमें और प्रतीकरुपमें शुभ और शांतिके लिए किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसके मंत्र और प्रतीक हृदय और मनको मिलानेवाले हैं। गृह-निर्माणके समय, वर-वधूके परिणयकालमें, खेतमें बीज डालते समय, यात्रा प्रारम्भ करते समय, व्यापारमें, सन्तानोत्पत्तिके समय और षोडश संस्कारोंमें स्वस्तिक मंत्र या प्रतीकका उपयोग परम्परागत है।

मिथिला चित्रमें स्वस्तिक प्रतीकको श्रीगणेश और उनकी दो स्त्रियों (सिद्धि और बुद्धि)का समन्वित रुप माना गया है।

शंख युक्त स्वस्तिकको 'लक्ष्मी-गणेश' का रुप और समृद्धिका मार्ग खोलनेवाला 'सौभाग्य-स्वस्तिका' कहा गया है।



शंख- वाटिका



सुग्गाकोर

सुग्गा माने होता है शुक, तोता, सुन्दर पक्षी।

प्रेम और सुन्दरताके देवता कामदेवके मुकुटमें वास होनेके कारण शुक या पक्षी सहज आंगिक प्रेमका प्रतीक है।



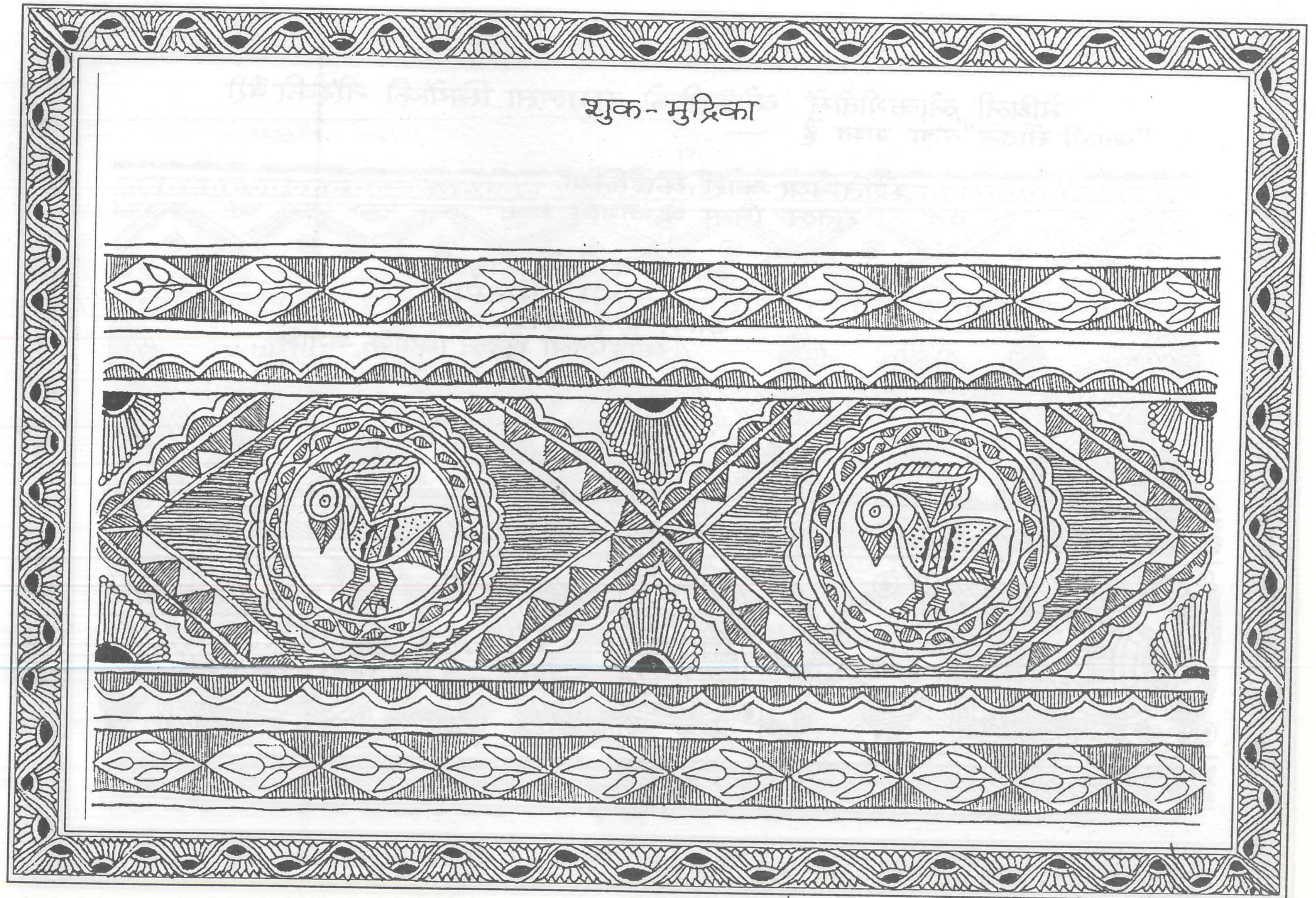

शुक-सारिका

मिथिला-चित्रस्रोतोंमें कतिपय गिने-चुने पक्षियोंका ही उल्लेख है। इन पक्षियोंमें तोता-मैना-मयूर-कपोत-चकोर-कोइली और कौआ प्रमुख हैं —

"'इन्द्र' चकोर कपोत-कपोतिक, आँखिसँ-पाँखिसँ लाल भरइयै।
लाल लगै वसुधा सगरो जनु, आइ अबीरक बादि अबइयै॥"

—(इन्द्र नारायण)

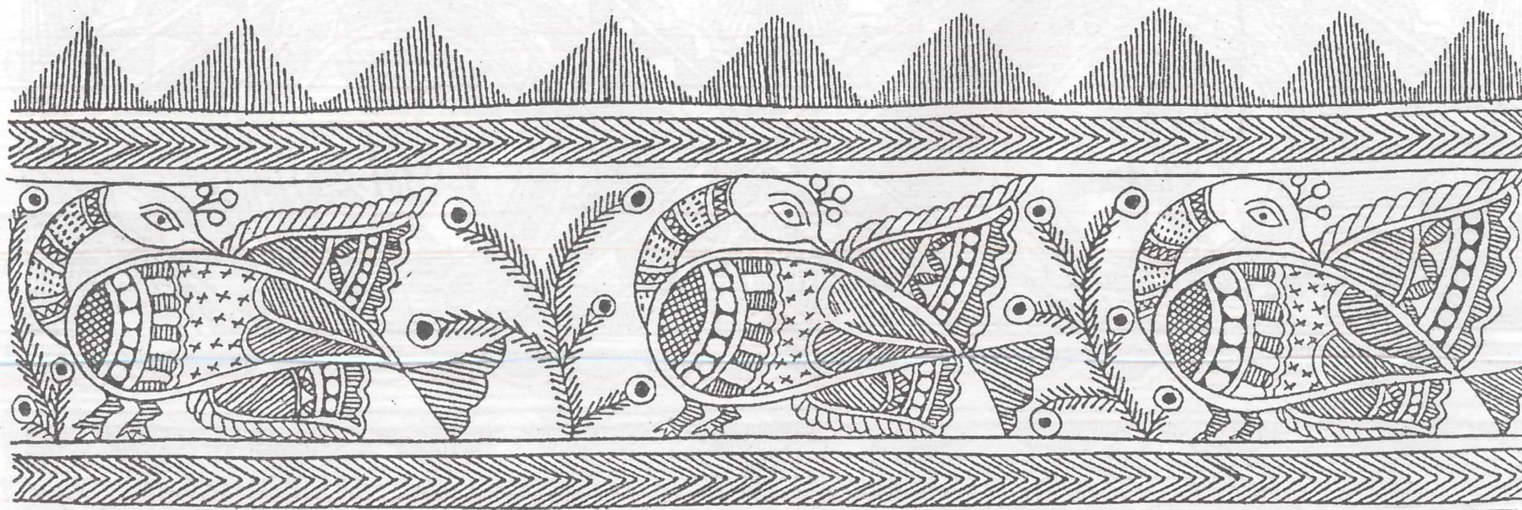


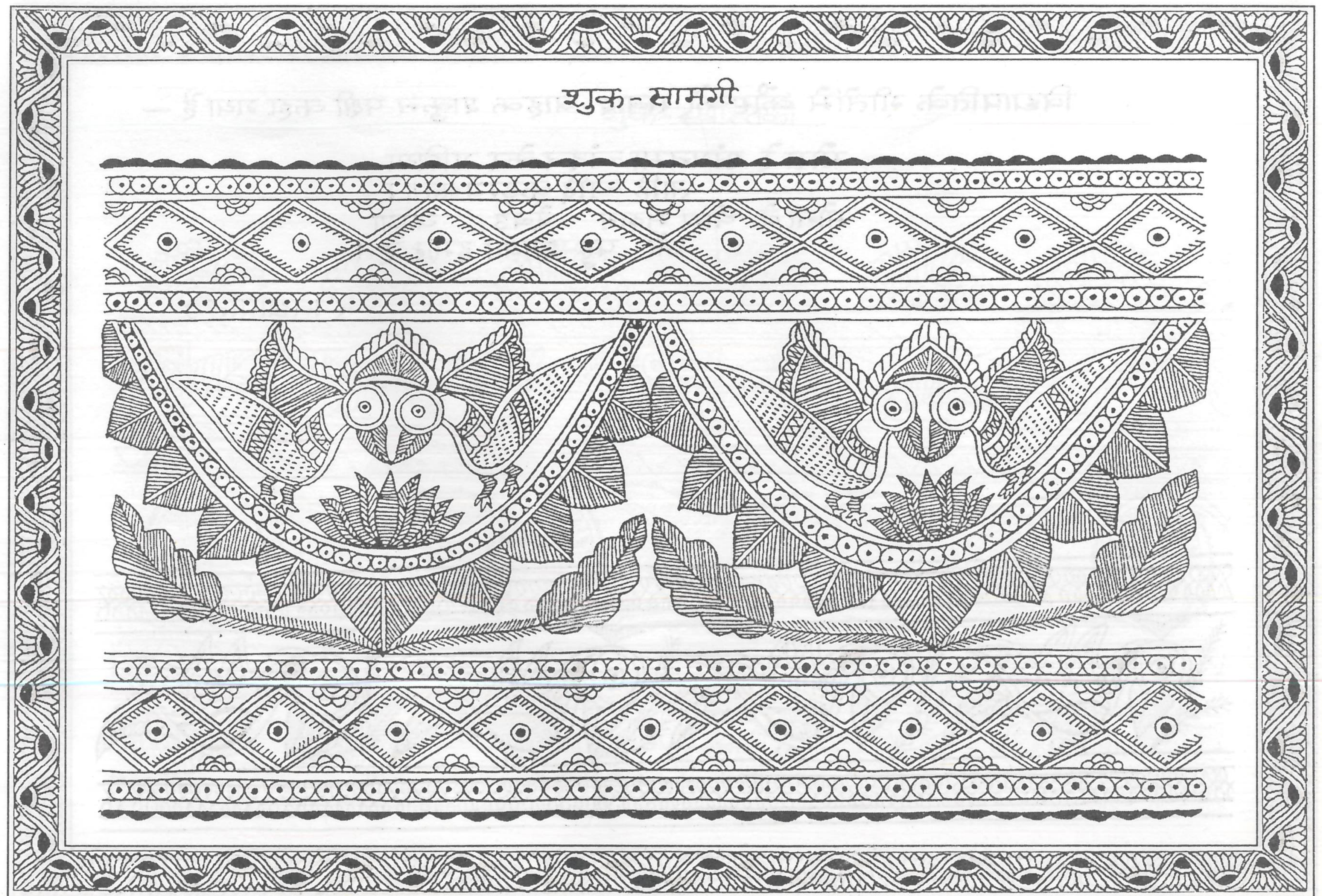

शुक-मुद्रिका

मैथिली लोकगीतोंमें कोइलीको मदालसा स्त्रियोंकी नींदकी वैरी "काली सौतन" कहा गया है —

सौतिनिया कारी कोइलिया
सूतल पिया के जगावे ।

आन दिन बोले कोइली
भोर - भिनसरबा,
आज काहे बोले अधरतिया
कोइलिया सूतल पिया के जगावे ....




शुक-सामगी

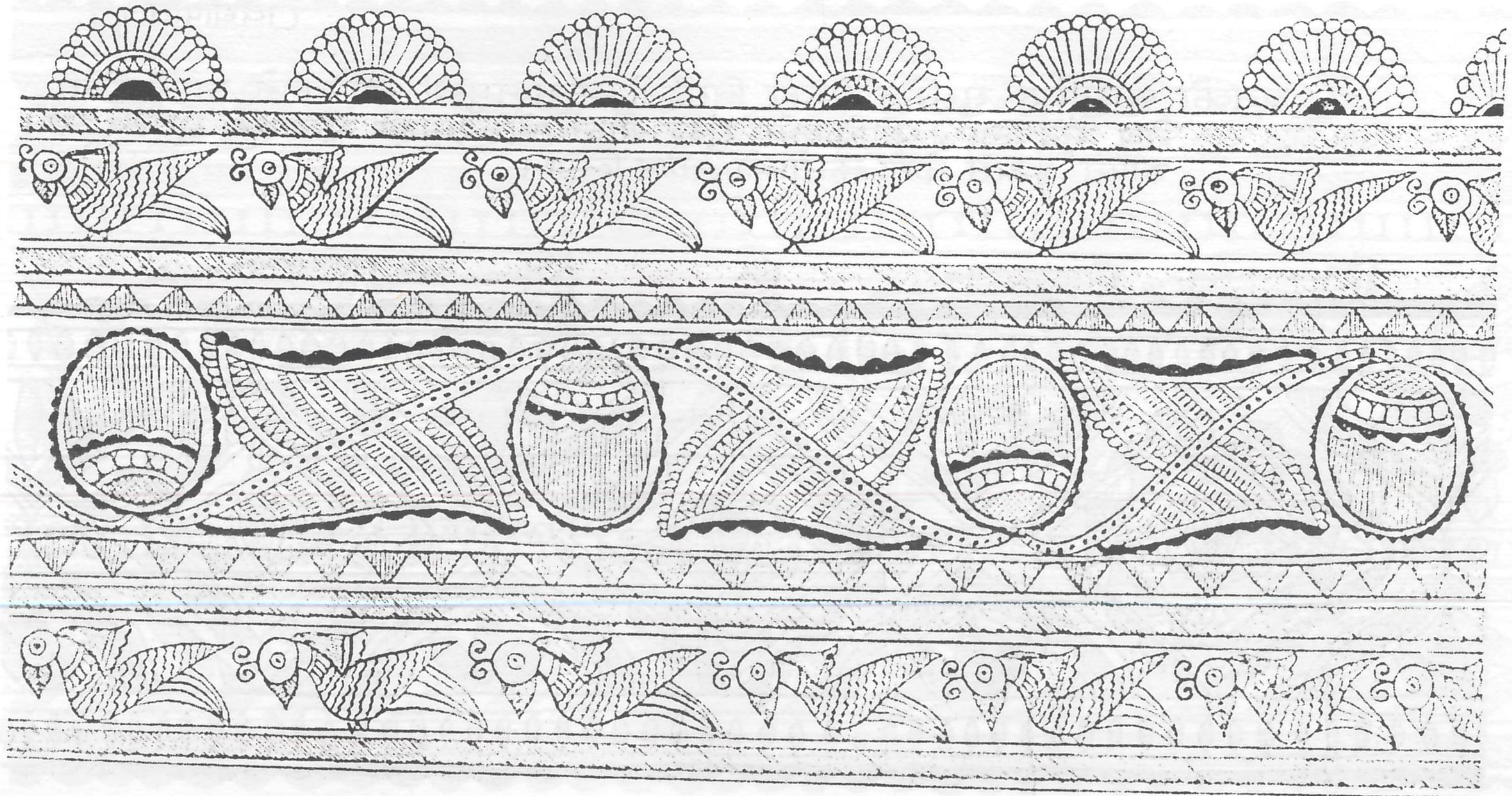
विद्यापतिके गीतोंमे कौएको संवाद-वाहक शकुन पक्षी कहा गया है —

मोरा रे अंगनमा चंदन केर गछिया
ताहि चढ़ि कुड़रय काग रे,
सोना के चोंच मढ़ाए देबउ कागा
जौं पहु आयत हमार रे।

(विद्यापति)



शुक-स्वस्तिका

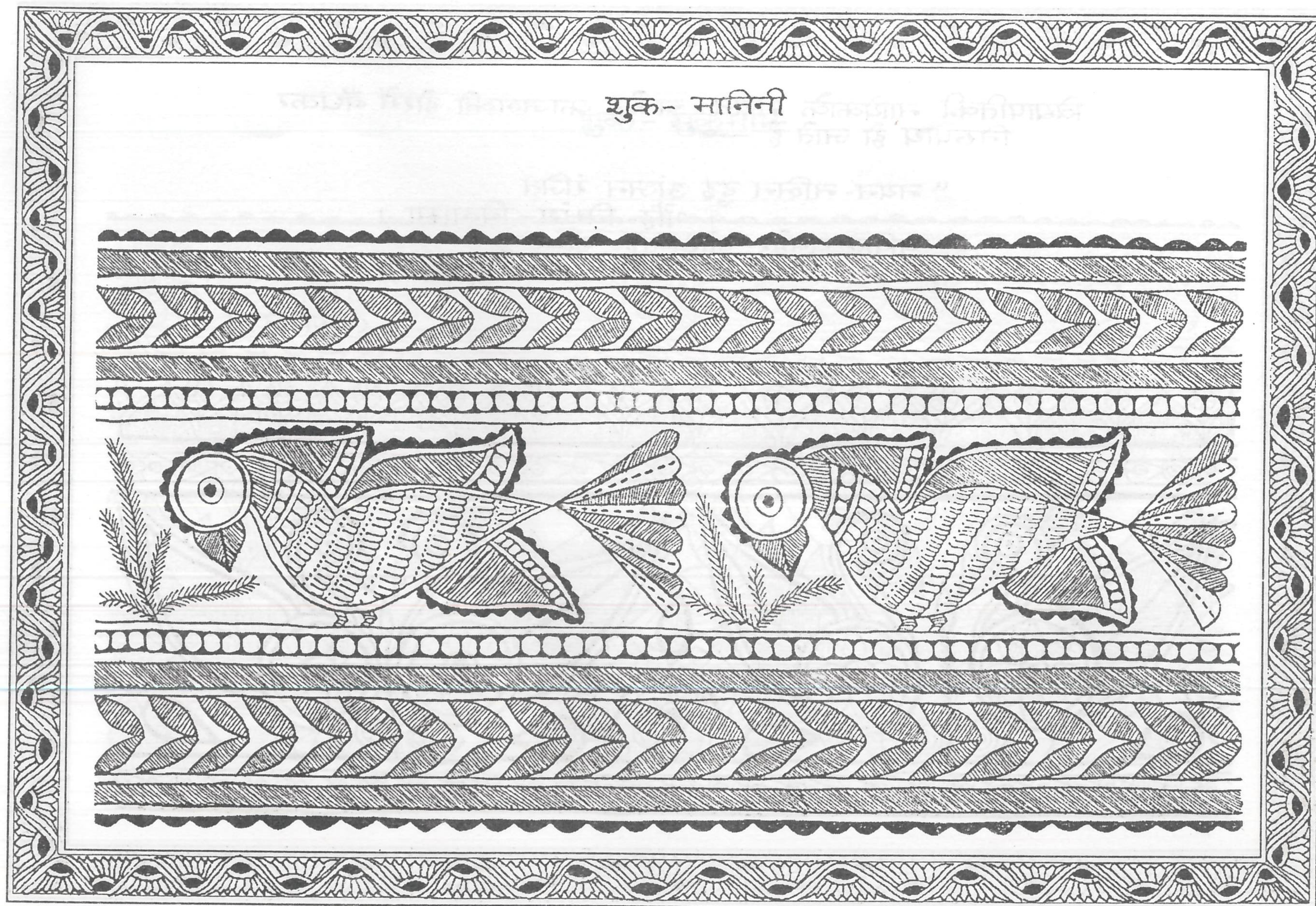


विरहिनी नायिकाको कोकिलके मधुर बोल चिढ़ाते- से लगते हैं —

"कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि, मुँदि रहु दुअओ नयान।
कोकिल कलरब मधुकर धुनि सुनि, कर लय झाँपय कान।।"

(विद्यापति)।

वनको कुसुमित-सुरभित देखकर विरहिनी कमलमुखी नायिकाने अपने दोनों नेत्र मूँद लिए, कोकिलके सुंदर बोल और भ्रमरके गुंजारको सुनकर उसने अपने हाथसे दोनों कानोंको झाँप लिया।

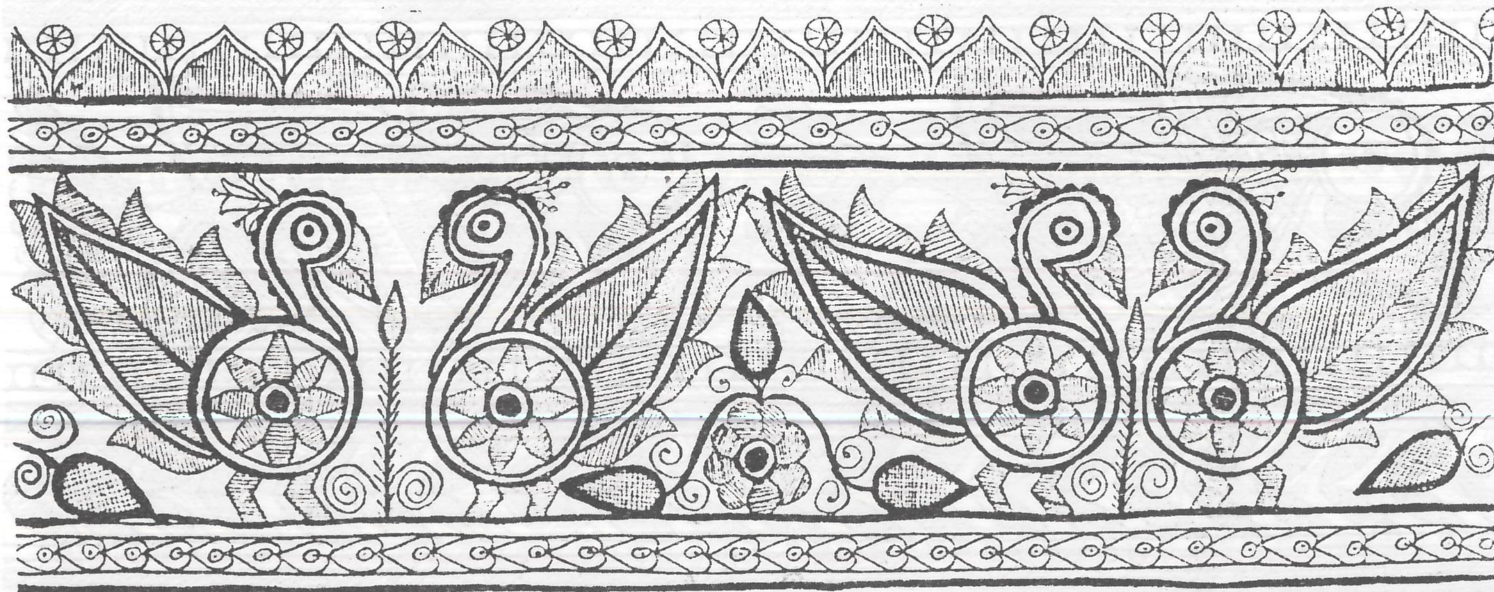


शुक- मानिनी

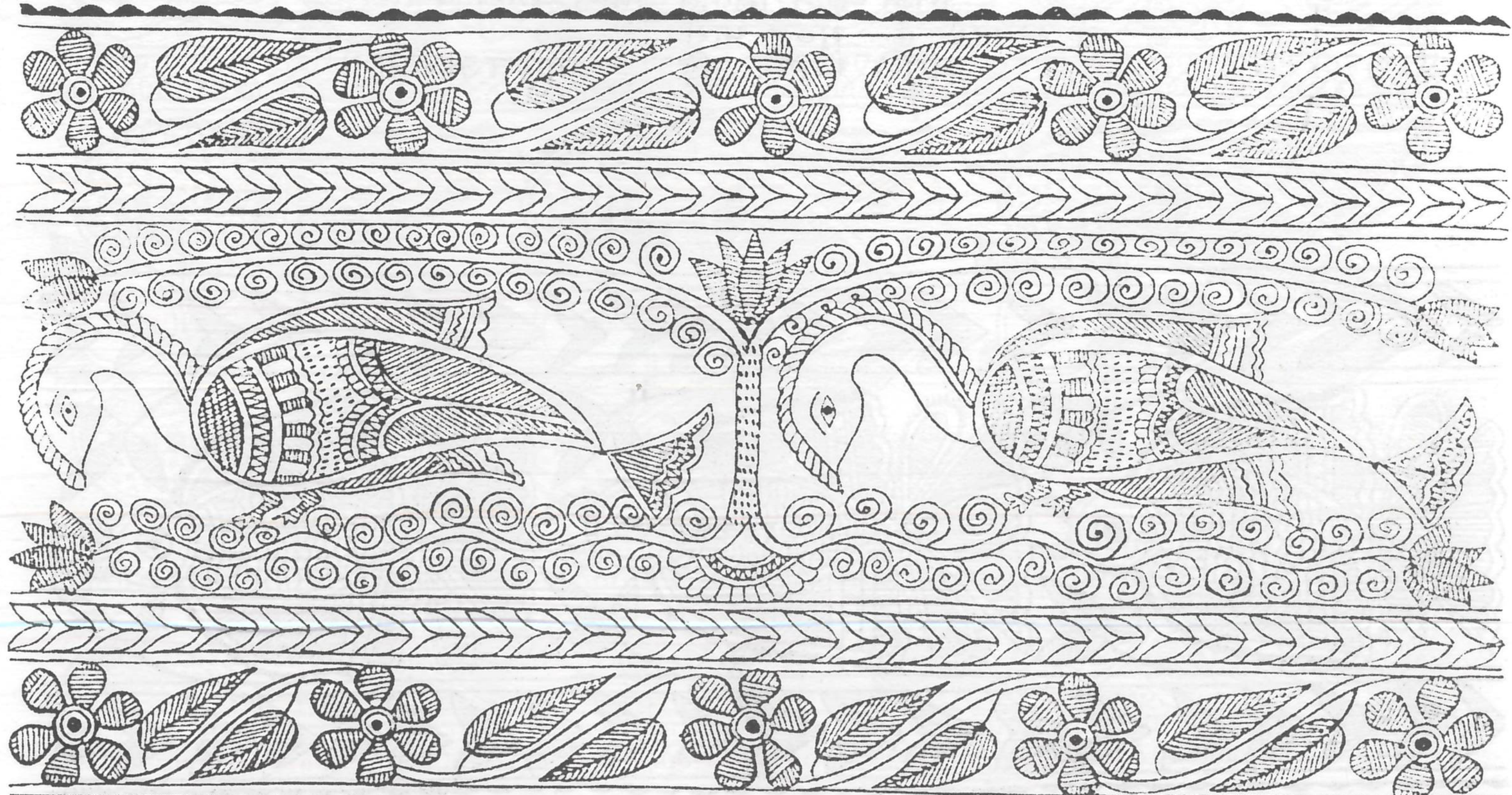
विद्यापतिकी नायिकाके नयन-चकोर काजलकी डोरमें बँधकर निरुपाय हो जाते हैं —

" नयन-नलिन दुइ अंजन रंजित
भौंह बिभंग-बिलासा ।
चकित चकोर-जोर बिहि बाँधल
केवल काजर पासा ॥"

(विद्यापति) ।



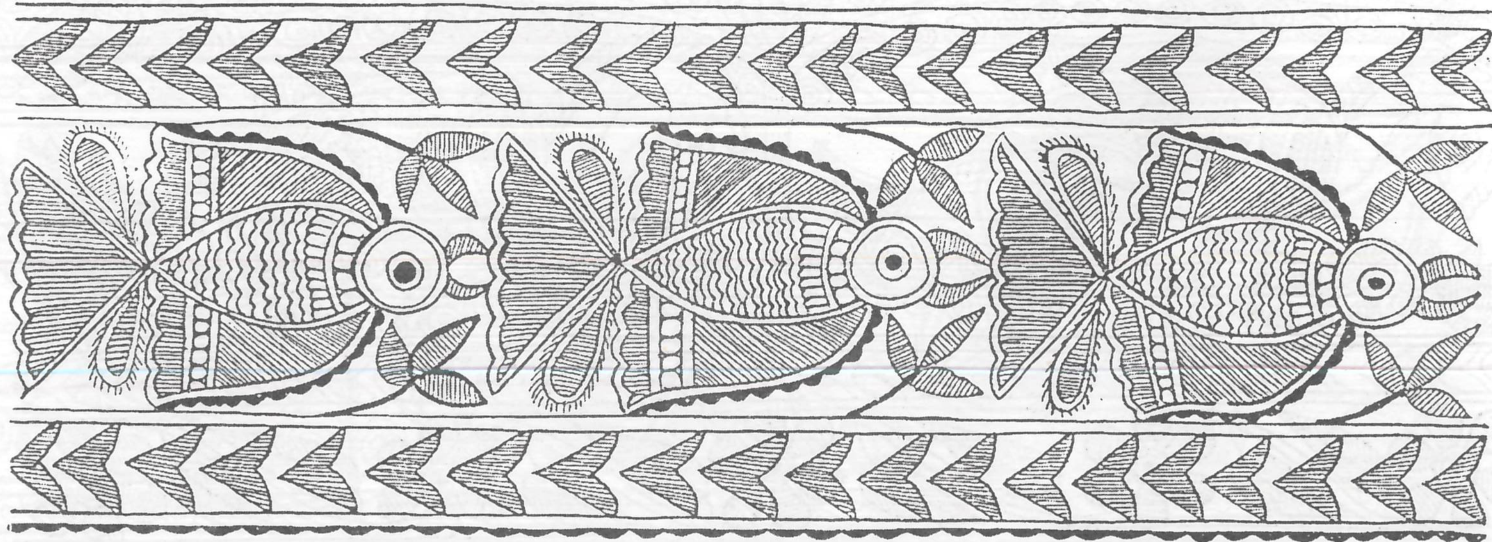
शुक - सुकुमारि



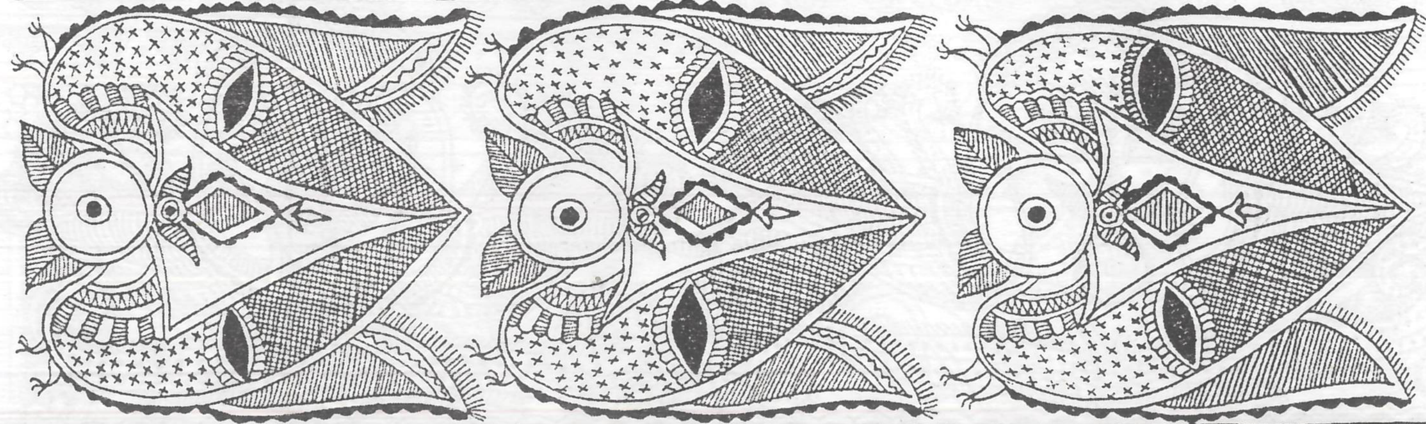
महाकवि विद्यापतिने चकवा पक्षीकी उपमा सुन्दरीके वक्षसे की है —

"कुच- जुग चारु चकेवा
निअ कुल मिलत आनि कोने देवा ।
तें संकाएँ भुज पासे
बाँधि धएल उड़ि जाएत अकासे ॥"

(विद्यापति)।



शुक-प्रिया



वनसप्तो

वनसप्तो एक वनदेवी है जिसका शरीर गाय-जैसा और उसके सोनेके पंख हैं, पक्षी जैसे। वह दयामयी, स्नेहमयी और वात्सल्यमयी है जो वनमें दुःखी प्राणियोंकी रक्षा करती है।

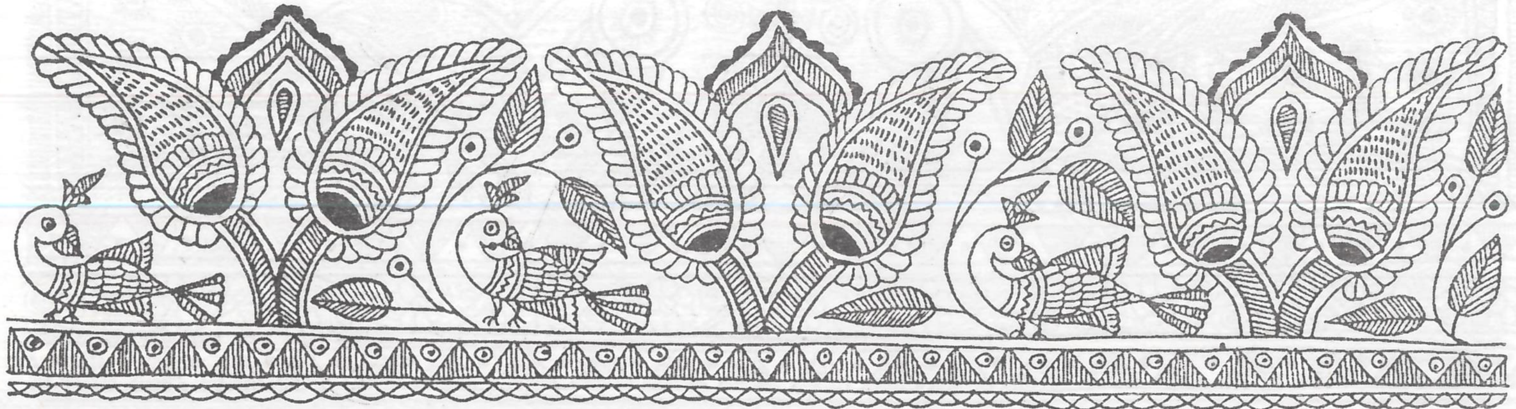


शुक- मल्लिका

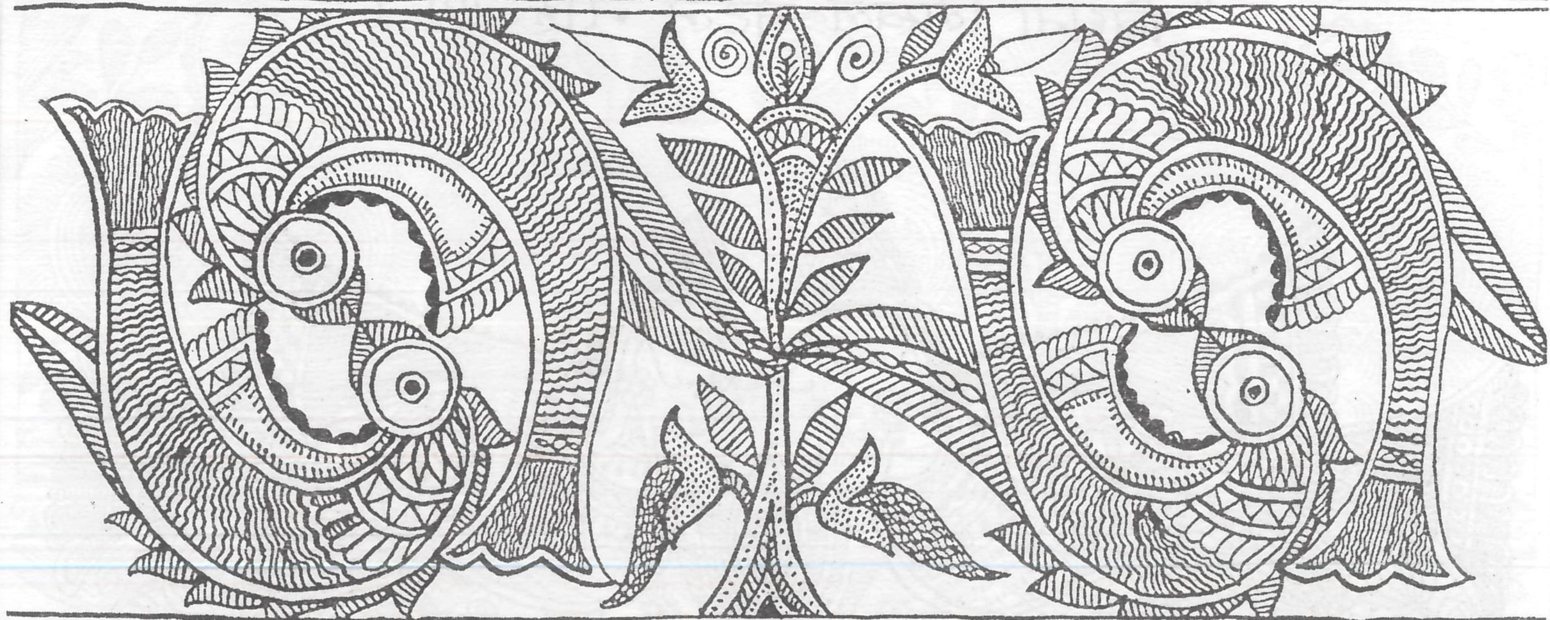


लटपटिया सुग्गा

लटपटिया माने होता है लिपटानेवाला या लिपटा हुआ। कोबरघरका अनिवार्य चित्र है यह सुग्गा। शुक और शुकीके मिथुनरत इस जोड़ेको वृत्ताकार प्रदर्शित किया जाता है। इस अभिव्यक्तिका निहितार्थ यह है कि धर्मके द्वारा स्वीकृत भोगकी मिथुन प्रक्रिया निरन्तर चलती रहे, अनाहत।



लटपटिया सुग्गा



विधि-विधाता

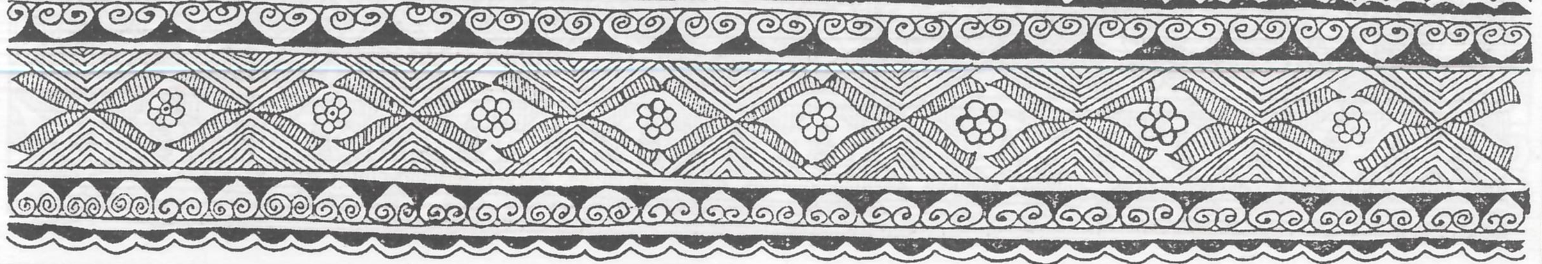
विधि-विधाता कपोतरूप देव-दंपति हैं जो नवजात शिशुका भाग्य लिखते हैं।

"बिधना लिखल मेटल नहि जाय"।



शुक - सुहागिनी

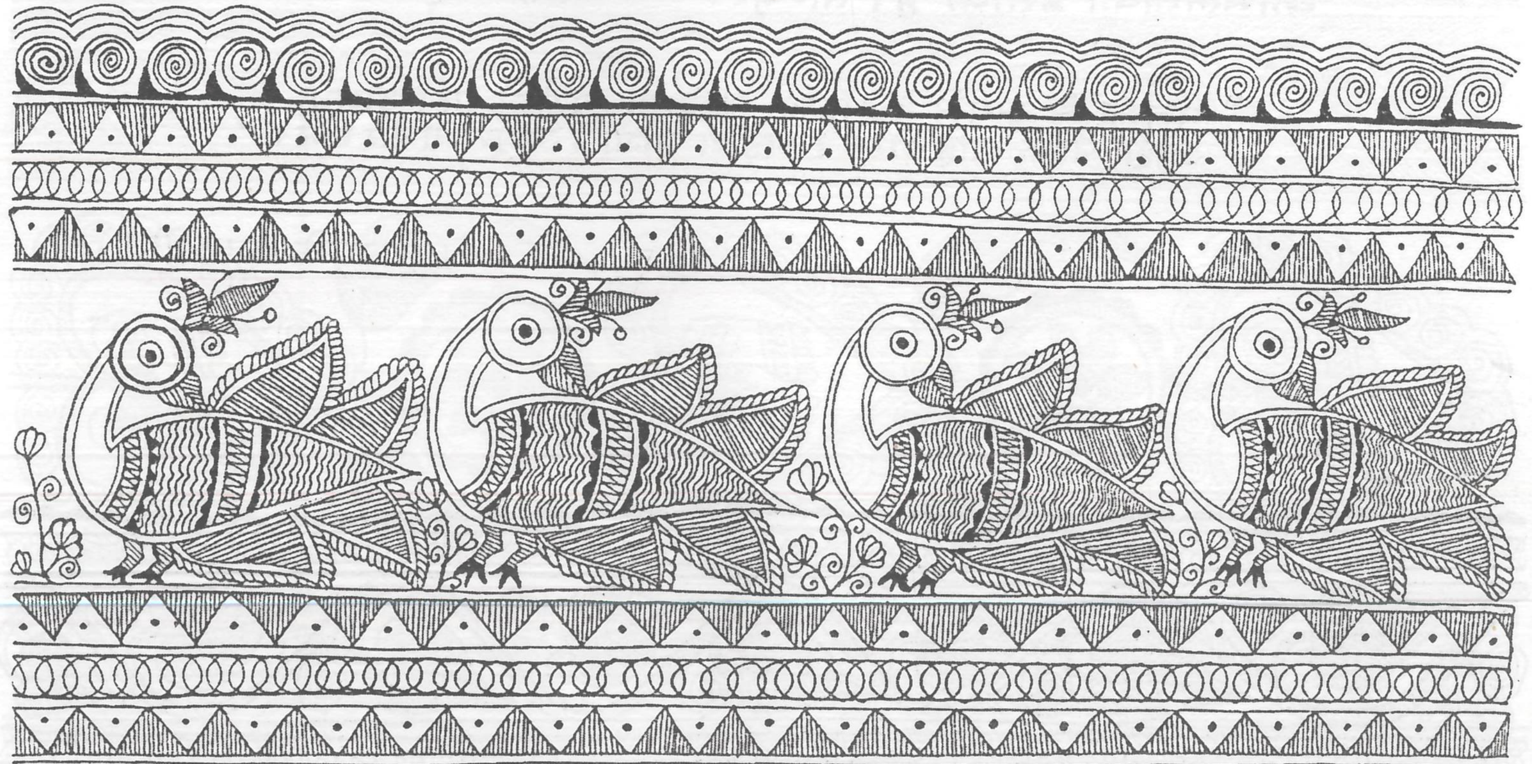




शुक-विलास



शुक-सज्जिता

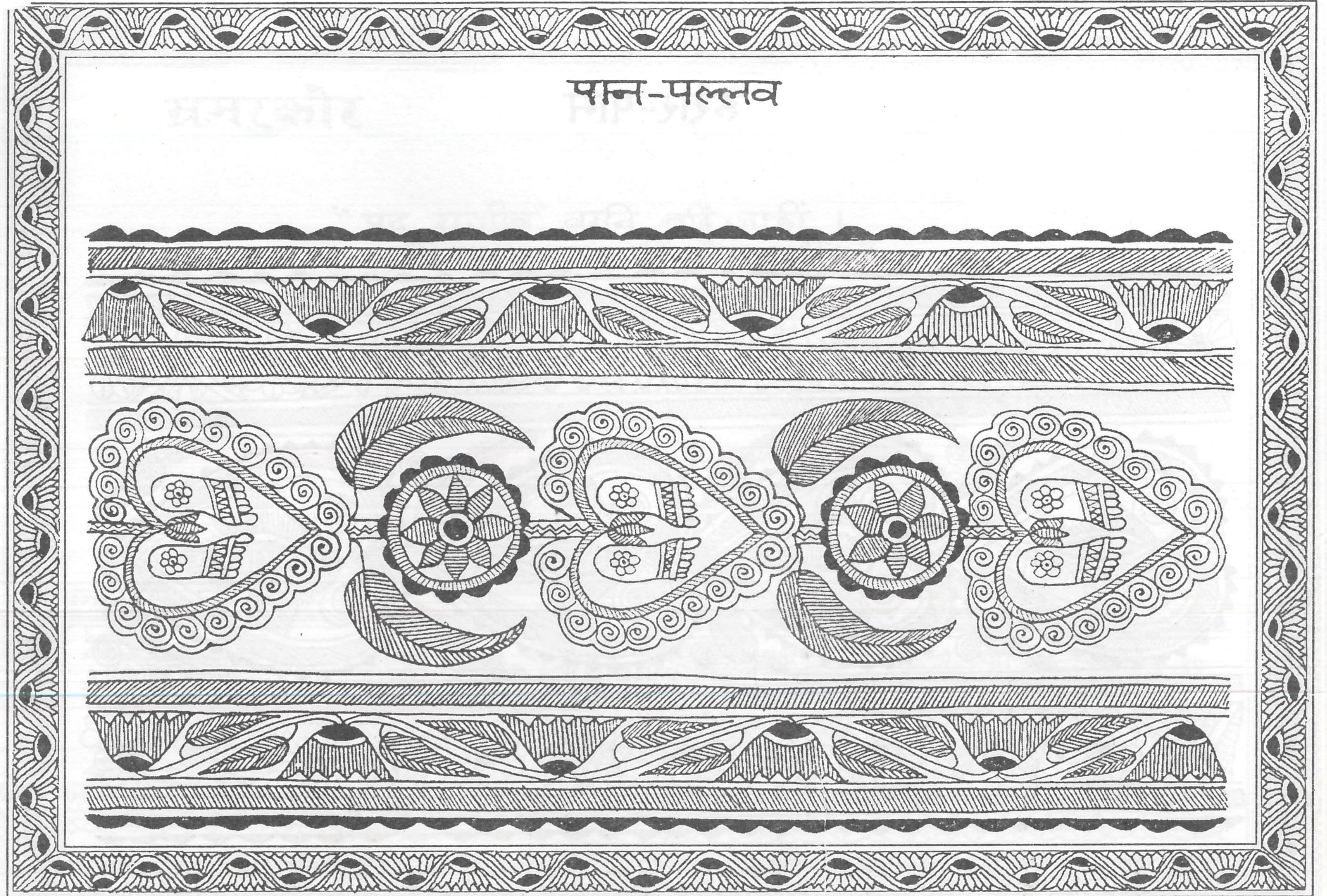


पानकोर

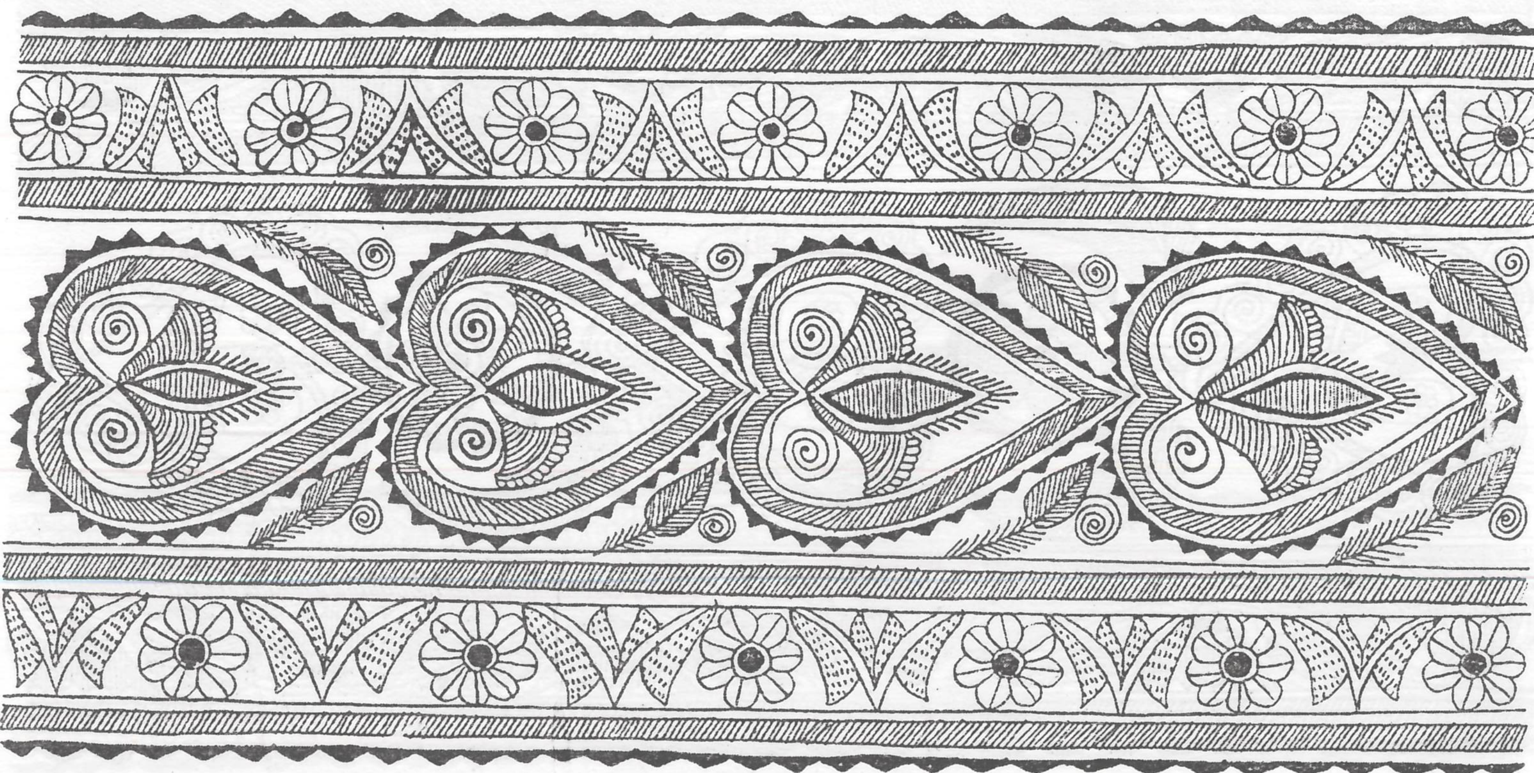
मिथिला संस्कृतिमें पान स्नेह, आदर और शारीरिक कोमलताका प्रतीक है। ताम्बूल भक्तिकी षोड़सोपचारकी एक विधि भीहै।

" पनमा जे खयलें रे भइया पीकिया नेरौले एही ठाम।
ओही पीके बहि गेल रे भइया गंगा रे जमुनमाकेर धार॥"

(सामाके कण्ठगीत)।


पान-पल्लव

हरीर-पान

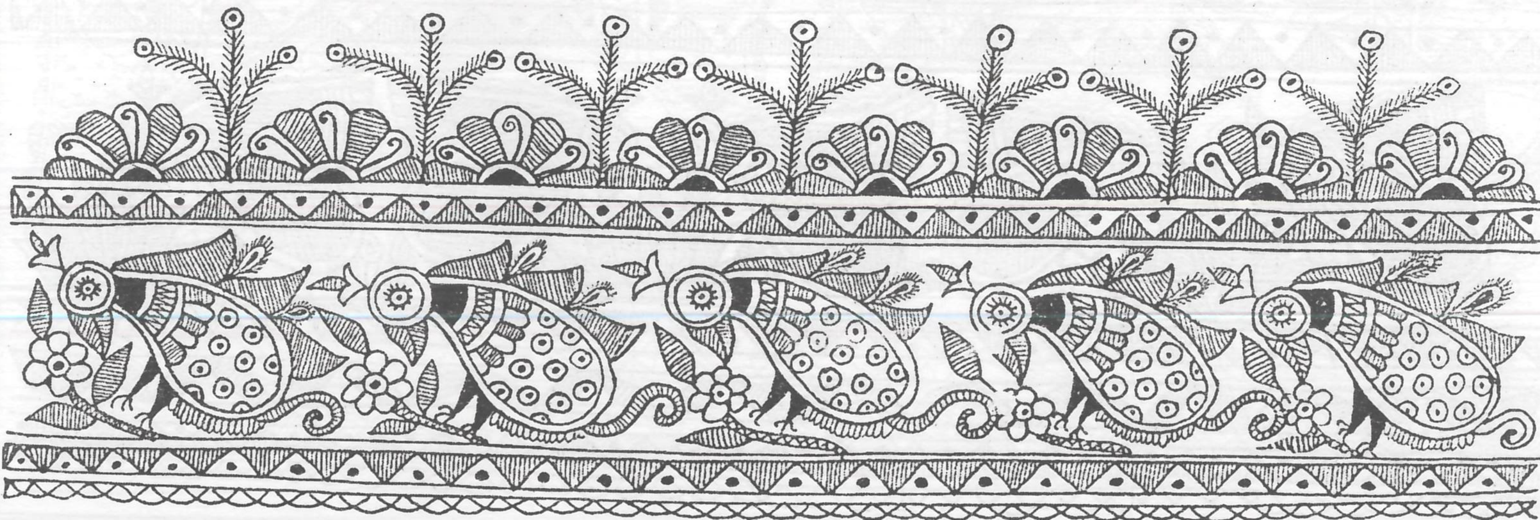


भ्रमरकोर

"पद राजीव बरनि नहिं जाहीं ।
मुनिमन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ।।"

श्री रामचन्द्रजीके चरण-कमलोंकी शोभा का वर्णन कठिन है, जिन चरणोंमे मुनियोंके मन रुपी भ्रमरोंका वास है ।

(श्रीरामचरित मानस)।



कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा
कुटिल केस जनु मधुप समाजा ।

(तुलसीदास) ।



श्री भगवानके कानोंमें मकराकृत (मछलीके आकारके) कुण्डल और सिरपर मुकुट सुशोभित था। घुंघराले काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंरोंके झुण्ड हों।

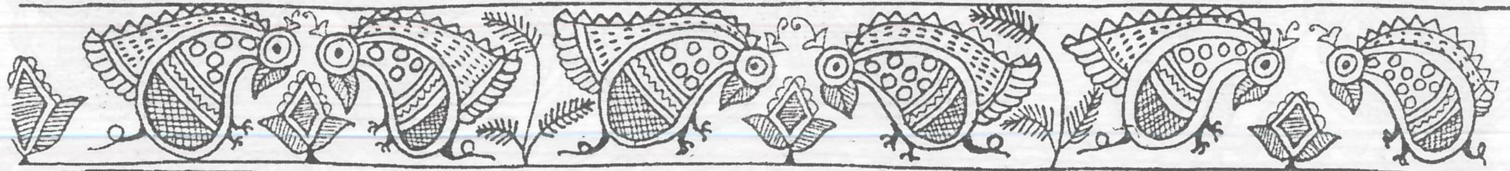
(श्रीरामचरित मानस)



" शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुपविरावम् ।
कुसुमशरासनशासनबन्दिनि पिकनिकरे भज भावम ॥"

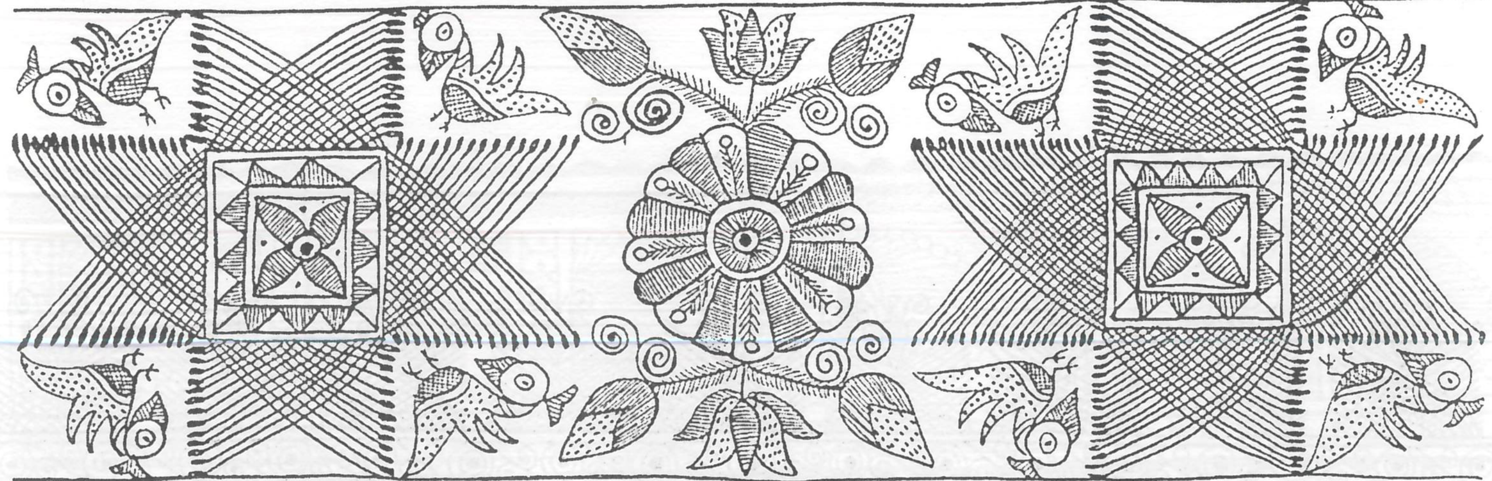
हे मुग्धे! तरुणियोंको भी मोहित करनेवाली भ्रमरोंकी ध्वनि सुनो तथा कामदेवकी आज्ञाका उद्घोष करनेवाले कोकिल-समूहमें अपने भावोंको प्राप्त करो।

(गीतगोविन्दम्)।

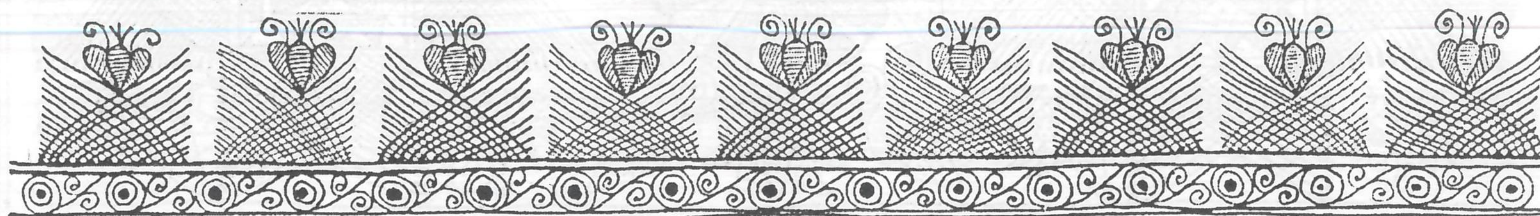


बाँसकोर

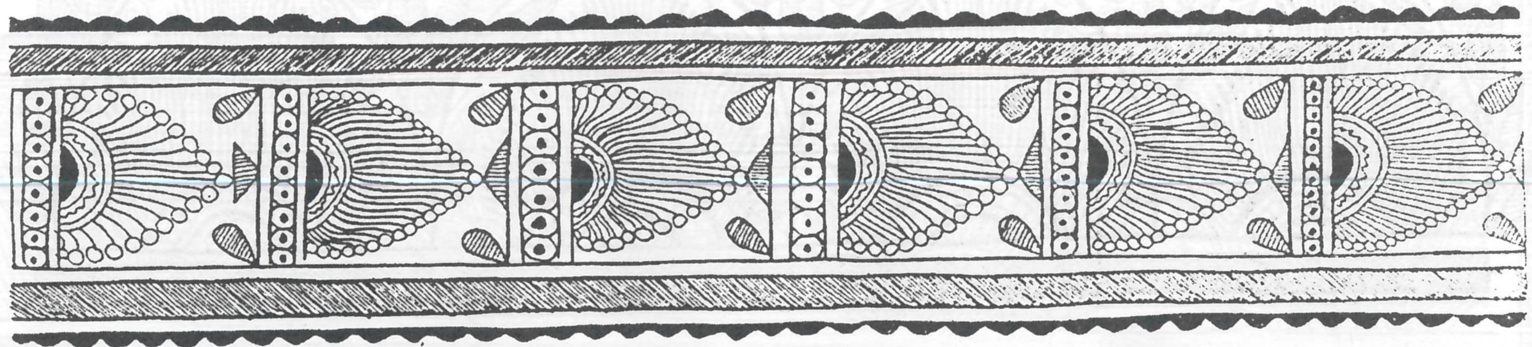
बाँस मिथिला चित्रशैलीका एक विशिष्ट आलेखन है। सम्पूर्ण वैवाहिक चित्रोंमें बाँसका वैसा ही महत्व है जैसा कि विवाहमें स्वयं वरका।



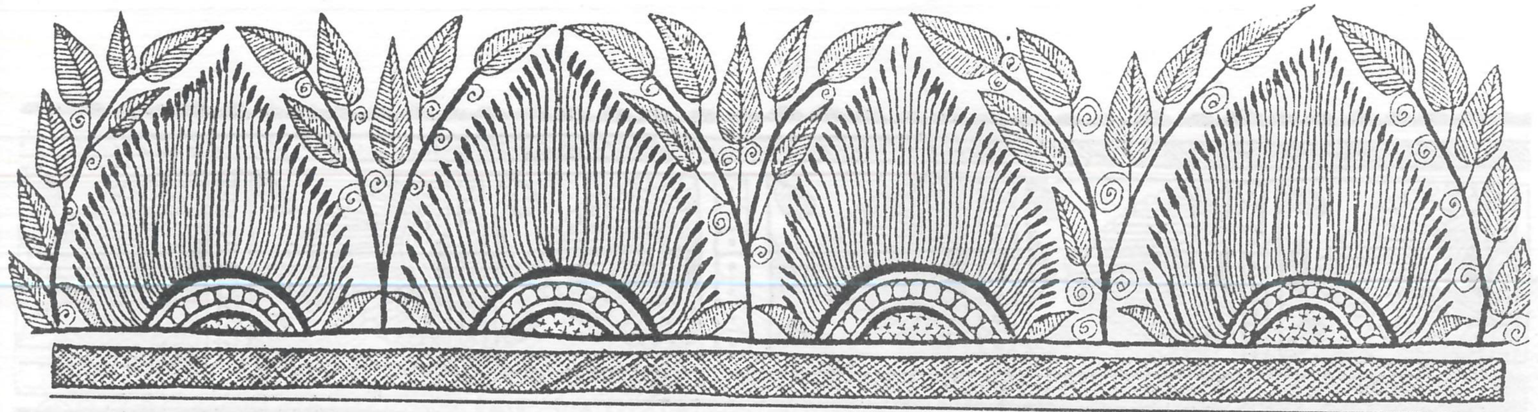
बाँसको मैथिल जीवन-पद्धतिमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दैनन्दिन जीवनमें इसकी उपयोगिताके कारण ही इसे जीवन और मृत्यु दोनोंका संगी कहा गया है। इसकी सदावहार वृद्धि और सघन उत्पत्तिके कारण बाँसको सांसारिक विकासका द्योतक और वंश-वृद्धिका प्रतीक माना जाता है।



बाँस लिङ्ग का प्रतीक है और 'पुरुष' का प्रतिनिधित्व करता है।

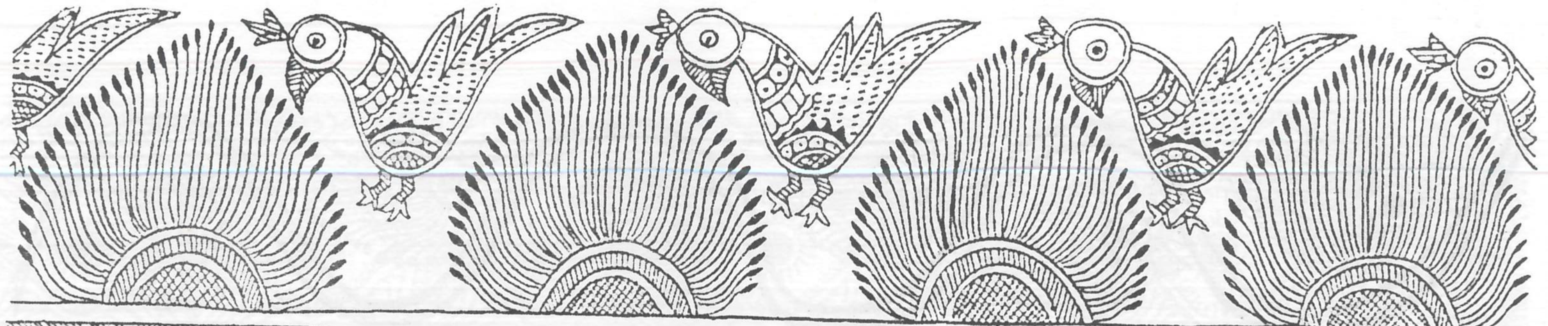


वैवाहिक चित्र 'कोबर' के दो मूल तत्व हैं — बाँस और पुरइन । बाँस पुरुषका प्रतीक है और पुरइन स्त्रीका । कोबर चित्रमें बाँसका मध्यतन मुख्य पुरइनसे आच्छादित और छः अन्य पुरइनोंसे परिवृत दिखाते हैं जिसका प्रतीकार्थ है स्त्री-पुरुष या वर-वधूका नित्य सायुज्य ।

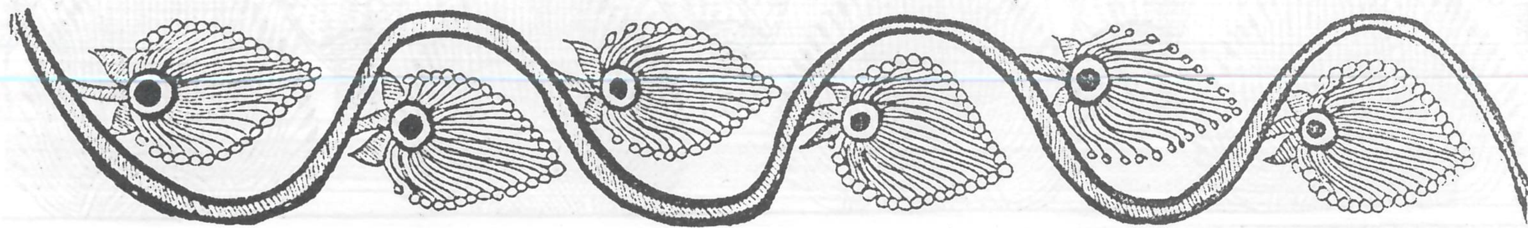


बाँसके फूल

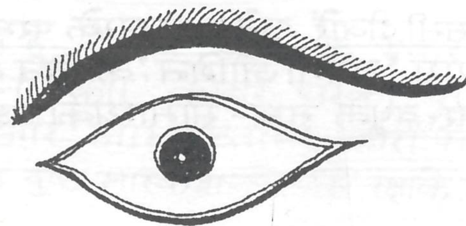
पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे होनेवाली
सृष्टिका द्योतक है बाँसका फूल ।



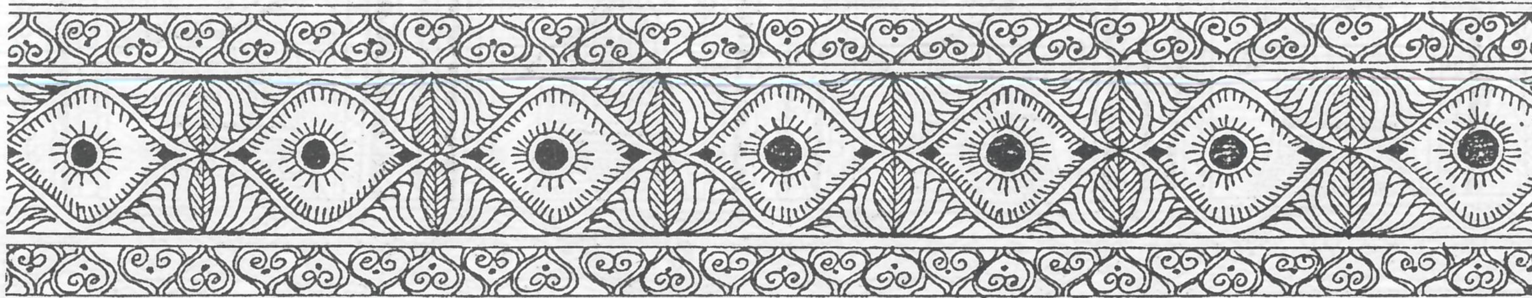
चित्रमें बाँसका शीर्ष पुष्पित दिखलाया जाता है। कहते हैं, जब भीषण अकाल पड़ता है, शस्य-श्यामला भूमि हरीतिमा-विहीन हो जाती है और समस्त पादप-समूह नीरस-निरर्थक हो जाते हैं तब बाँसमें फूल लगते हैं। ये फूल नीरसतामें सरसताके द्योतक और अन्यतम धैर्यके परिचायक हैं।



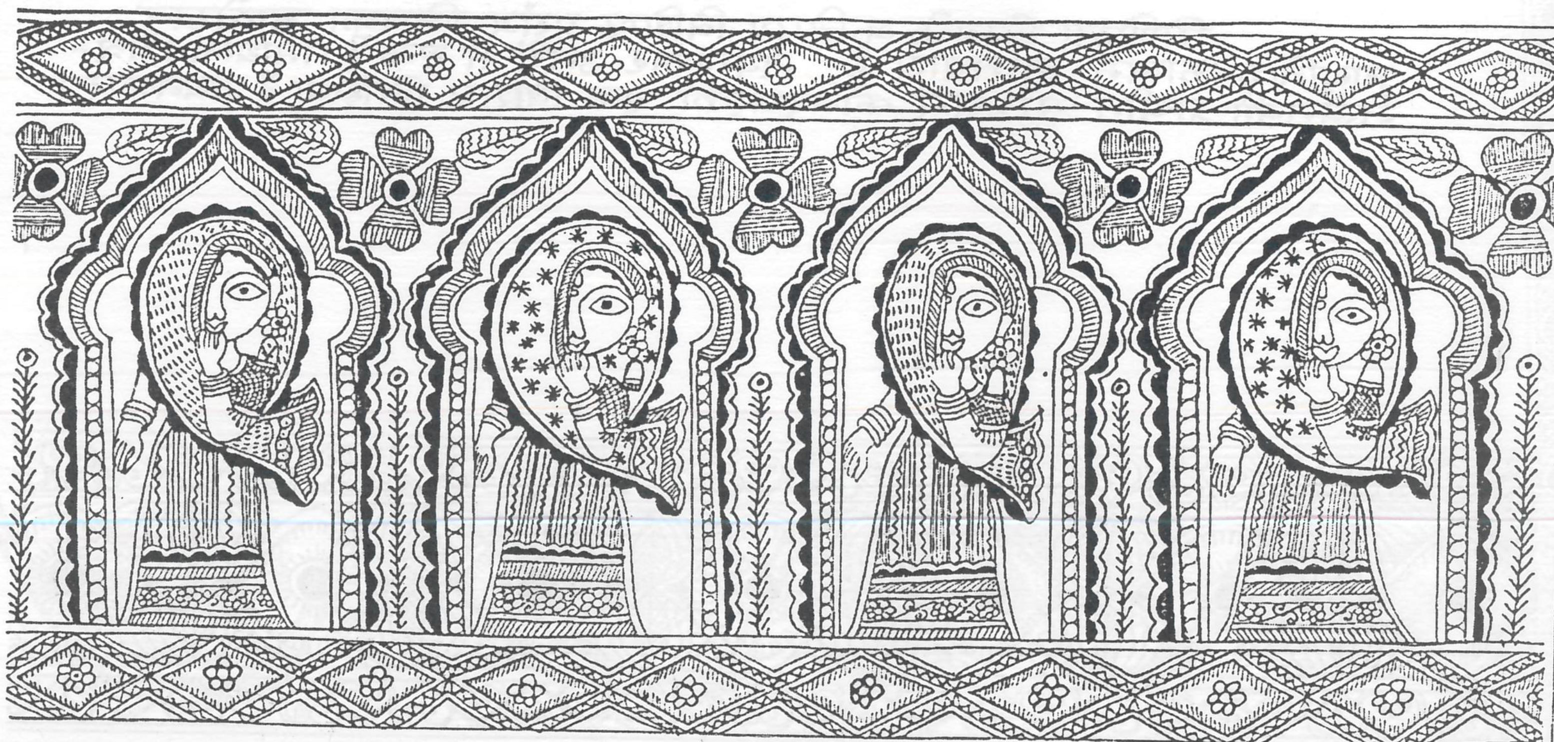
नयनकोर



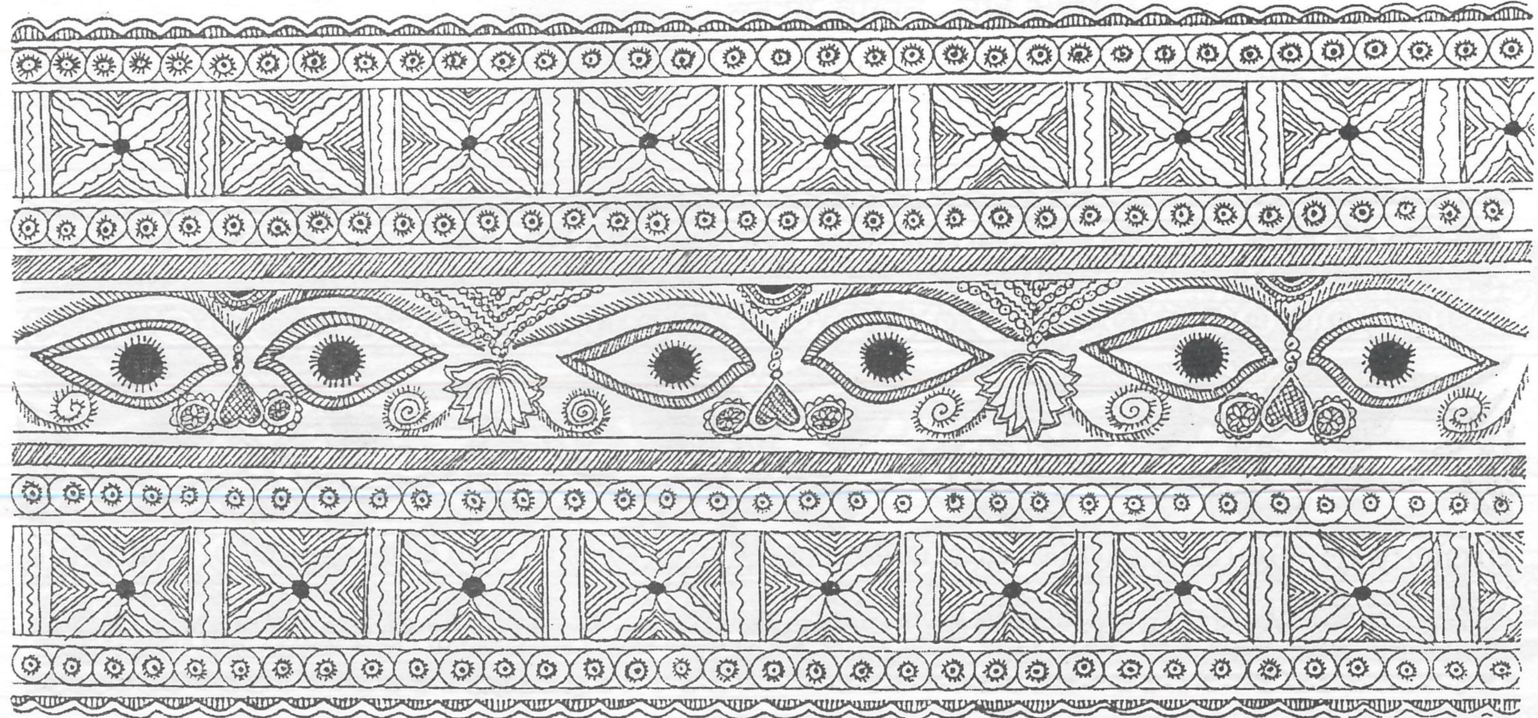
मिथिला चित्रके कतिपय विशिष्ट प्रसंग जिनका आलेखन आधुनिक कालमें लुप्तप्राय है, नयनकोर उनमें से एक है। मिथिला चित्र-लेखनकी प्राचीन परम्परामें कोबरघरकी एक विशिष्ट लिखिया है नयनकोर।



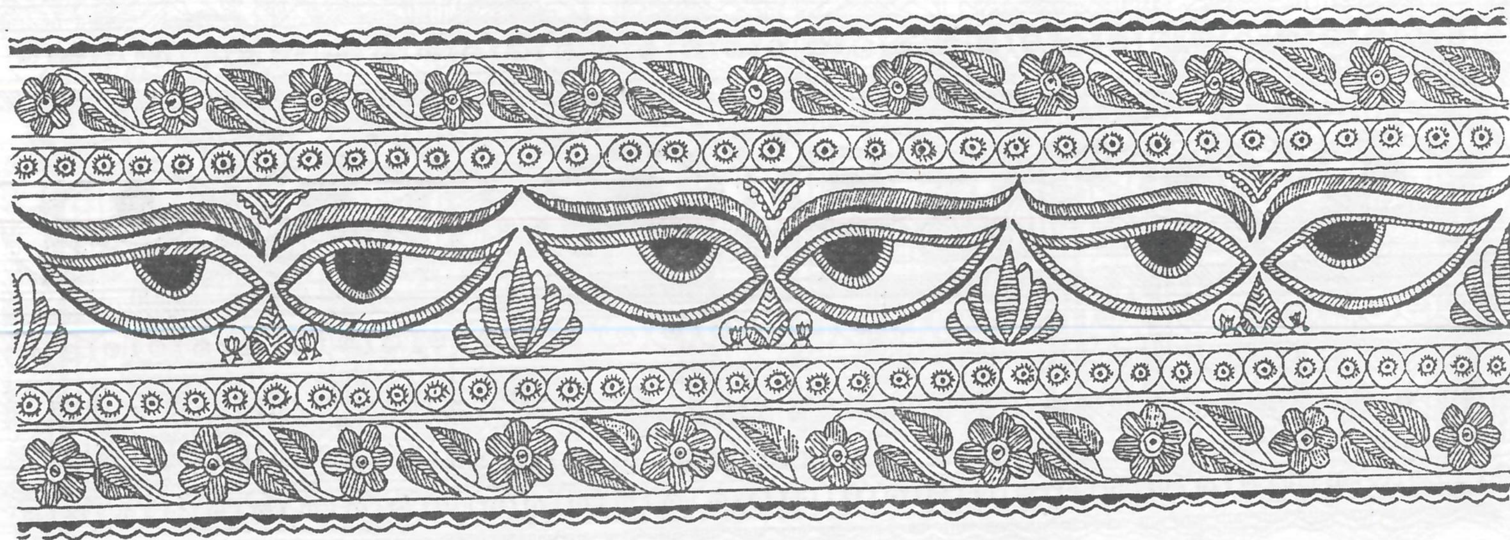
कोबर घरकी सभी दीवारें अनेक प्रकारके परम्परागत चित्रों-प्रतीकोंसे सज्जित की जाती हैं। कक्षके चारों कोनोंके पास **'नयना जोगिन'** के चित्र बनाए जाते हैं। नयना जोगिन एक तांत्रिक-मांत्रिक शक्ति है जो वर-वधूके सुख-सौभाग्यकी रक्षाके लिए अहर्निश सजग रहती है।



'**नयना**' कहते हैं नेत्रको। शक्तिके एक सौ आठ रूपोंमें 'नयना-जोगिन' एक है। प्राचीन पद्धतिमें 'नयना-कोर' कोबर-घरका 'मुख्य कोर' था जिसके भीतर सभी प्रकारके चित्र बनाए जाते थे और 'आभ्यान्तरिक कोरों' से निबद्ध होते थे। वस्तुतः नयनाकोर की रचना कोबर-घरके चित्रोंकी दुष्ट मारक शक्तियोंसे रक्षाके लिए कवच-बन्धके रूपमें होती थी।



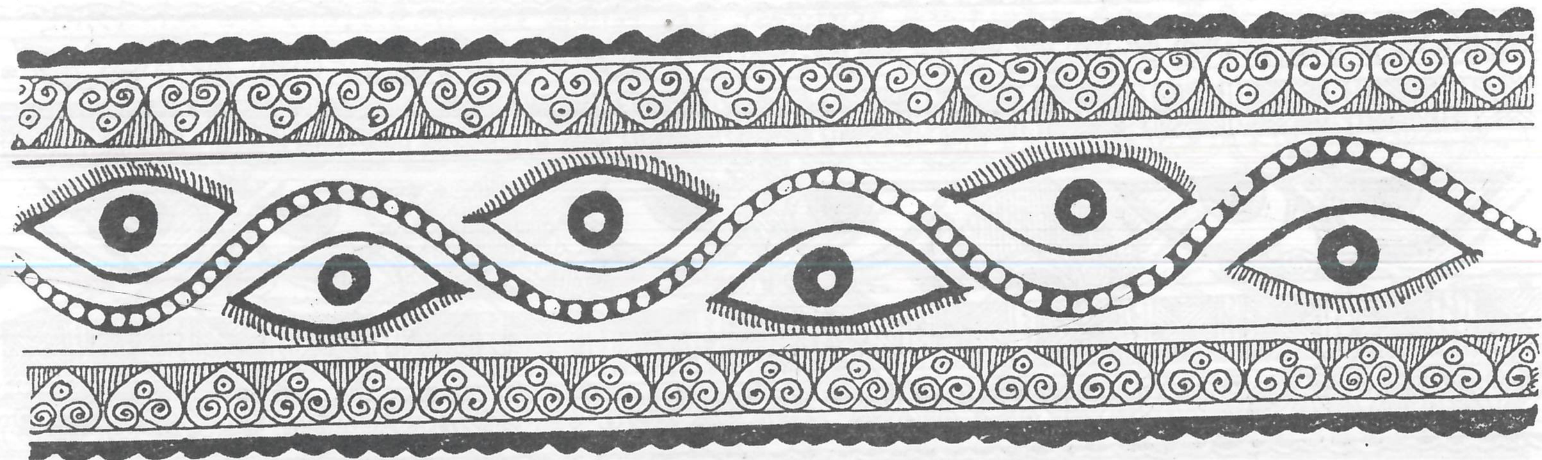
नारी-नयनकी जादूई सुन्दरताने समस्त विश्वके कवियोंको युग-युगसे सम्मोहित किया है। विश्वके महान कवियों और कलाकारोंने स्त्रीके नेत्रसे प्रेरणा लेकर अपनी काल्पनिक सृजनशीलताको अनेक प्रकारसे कविता, चित्रकला, मूर्त्तिकला और नृत्य-कलामें अभिव्यक्त किया है।



भारतीय साहित्यमें 'नयन' से सम्बन्धित उपमा और रूपकोंकी भरमार है। प्रकृतिके उत्कृष्ट उपहारों — सूर्य, चन्द्रमा, कमल, भौंरा, मृगा, खञ्जन, चकोर, मत्स्य, हाथी जैसे अनेक उपमानोंसे उपमित होनेके बाद भी 'नयन' अपने आपमें अतुलनीय है।

" कतेक जतन बिहि आनि समारल
तइयो तुलित नहि भेला।"

(विद्यापति)।

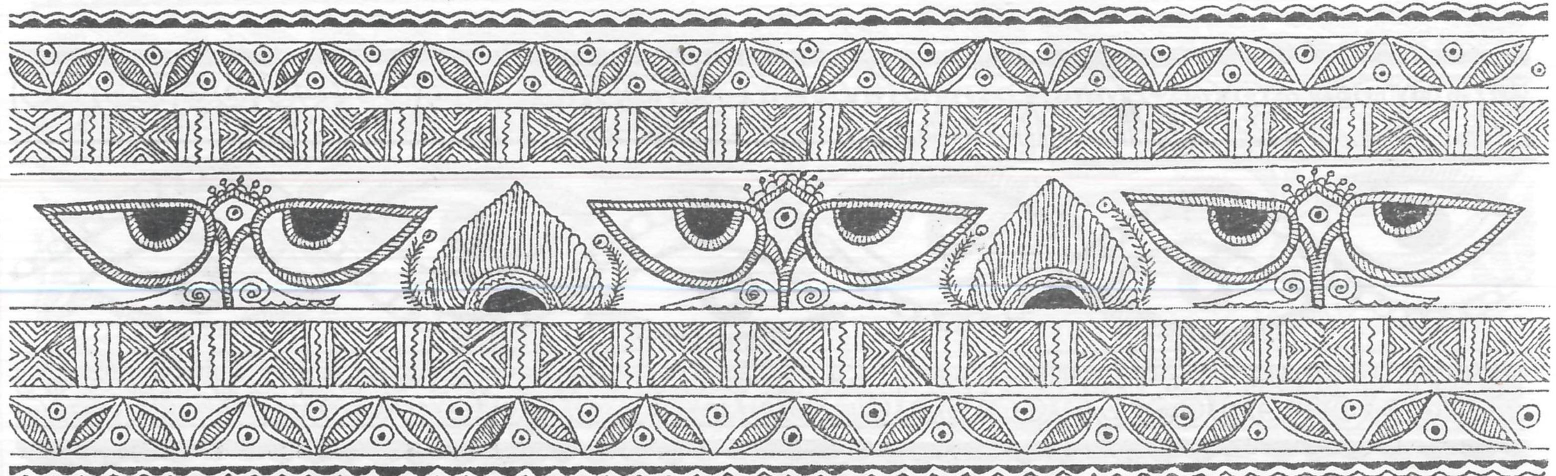


अथर्ववेदके ऋषियोंने 'नेत्र' में शाश्वत प्रेम और शांतिकी पृष्ठभूमि तथा आत्म-प्रवेशका द्वार देखा —

अक्ष्यौ ,नौ मधुसंकाश अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥

(अथर्ववेद - काण्ड 7)

" हे प्रिय ! तेरे और मेरे दोनोंके नेत्र मधुर भावसे युक्त हों। हम दोनोंके नेत्रोंके आगेके भागमें अञ्जन लगे और तू मुझे अपने हृदयमें धारण कर। हम दोनों समान मनवाले हो जाँय।"



मृगनयनी

महान कवि कालिदास नव-यौवना पार्वतीके सुन्दर नयनको देखकर द्विविधामें फँस गए। विश्व-साहित्यमें उपमा और रूपकके अप्रतिम सर्जक कवि यह निश्चित नहीं कर पा रहे हैं कि पार्वतीके नेत्रोंकी उपमा मृगनयनसे करें या मृगनयनकी उपमा शिव-प्रियाके नयनसे —

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ॥

(कुमारसम्भवम्)

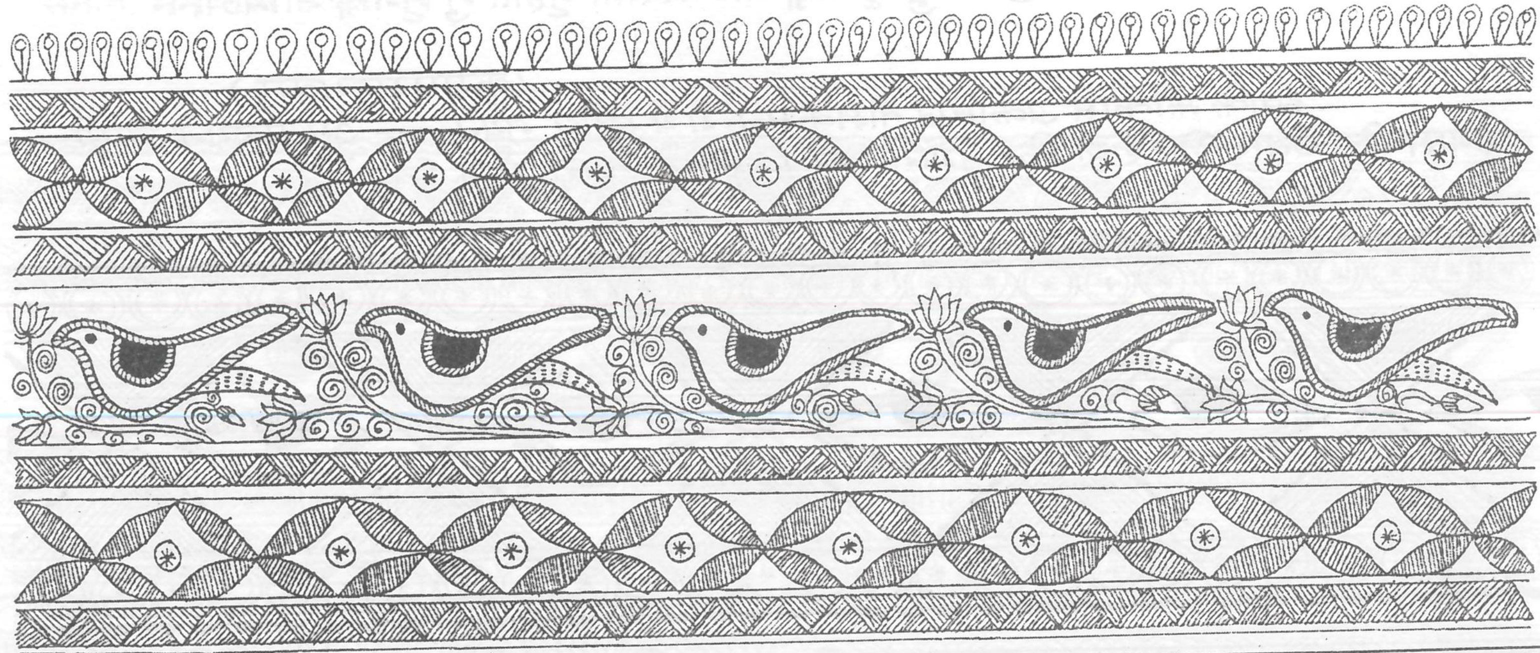
हवाके झोंकोंसे प्रकम्पित नीलकमल-से ये सुदीर्घ नयन — उस सुन्दरीने किसी मृगासे नेत्र उधार लिए हैं या फिर मृगाने उस किशोरीसे नयन माँग लिए हैं ?

खंजन-नयन

"खंजन नयन रूप रस माते .. ..
सूरदास अंजन गुन अटके नतरु अबहि उड़ि जाते ।"

—(सूरदास)।

विद्यापतिकी तरह ही सूरदासके खंजन-नयन भी काजलकी डोरसे बँधे हैं वरना कबके उड़ गए होते ।



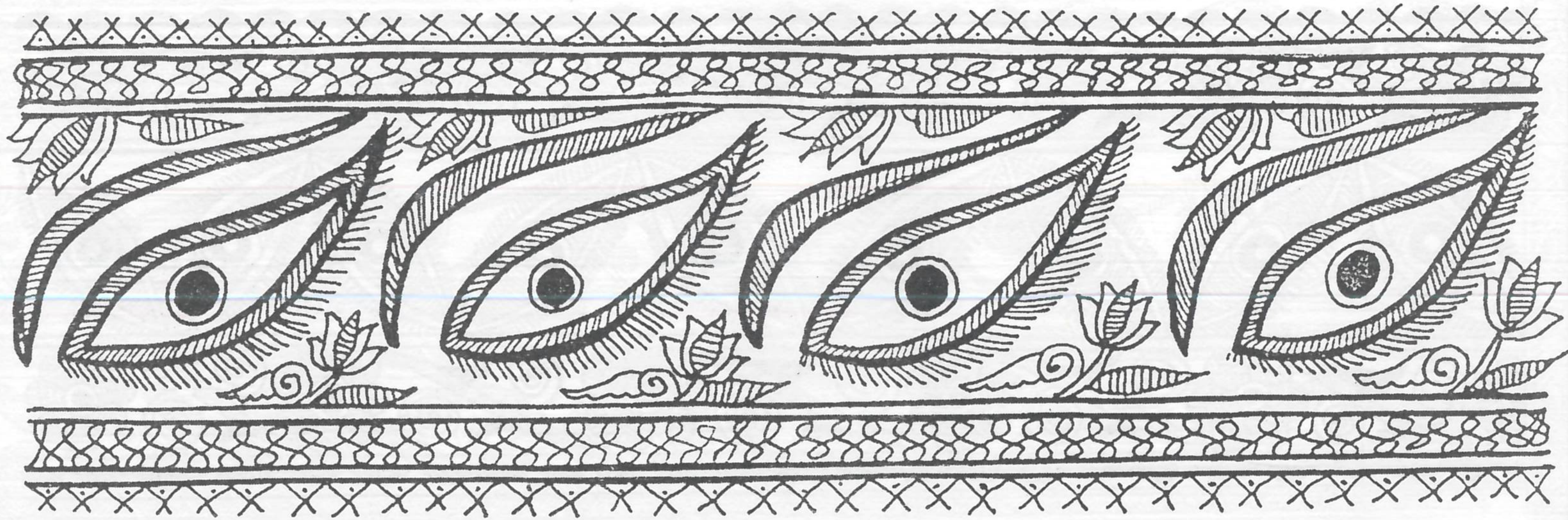
अंग्रेजीके महान कवि और नाटककार शेक्सपीयरने किशोरी बालाके नेत्रोंमें संसारकी समस्त विद्या और सम्पदाका आगार देखा —

" नारी- नयनके दर्शनसे मैं अपना यह सिद्धान्त निश्चित करता हूँ कि
उसकी आँखोंमें प्रोमेदियन अग्नि (स्वर्गकी अग्नि) की चमक है,
उसकी आँखोंमें सभी विद्याओंके ग्रन्थ, कलाएँ और विद्यागार हैं,
ये आँखें पथ- प्रदर्शिका, सर्वस्वधारिणी और माया- जगतकी पोषिका हैं।"

(Love's Labour's Lost)

सत्ता के मद में चूर देवराज इन्द्र ने एक बार गौतम-पत्नी अहिल्या का सतीत्व-हरण कर लिया। उसी समय वहाँ ऋषि गौतम आ गये; उन्होंने इन्द्र को 'सहस्रयोनि' होने का शाप दे दिया। ऋषि के शाप से इन्द्र के रोम-रोम में योनि हो गई।

मिथिला में जब श्रीराम और सीता का विवाह हो रहा था तो सीता-राम के दर्शन से इन्द्र का शाप नष्ट हुआ और उनके रोम-रोम में योनि बदल कर नेत्र हो गये। तब से इन्द्र 'सहस्राक्ष' कहाने लगे।



कच्छपकोर

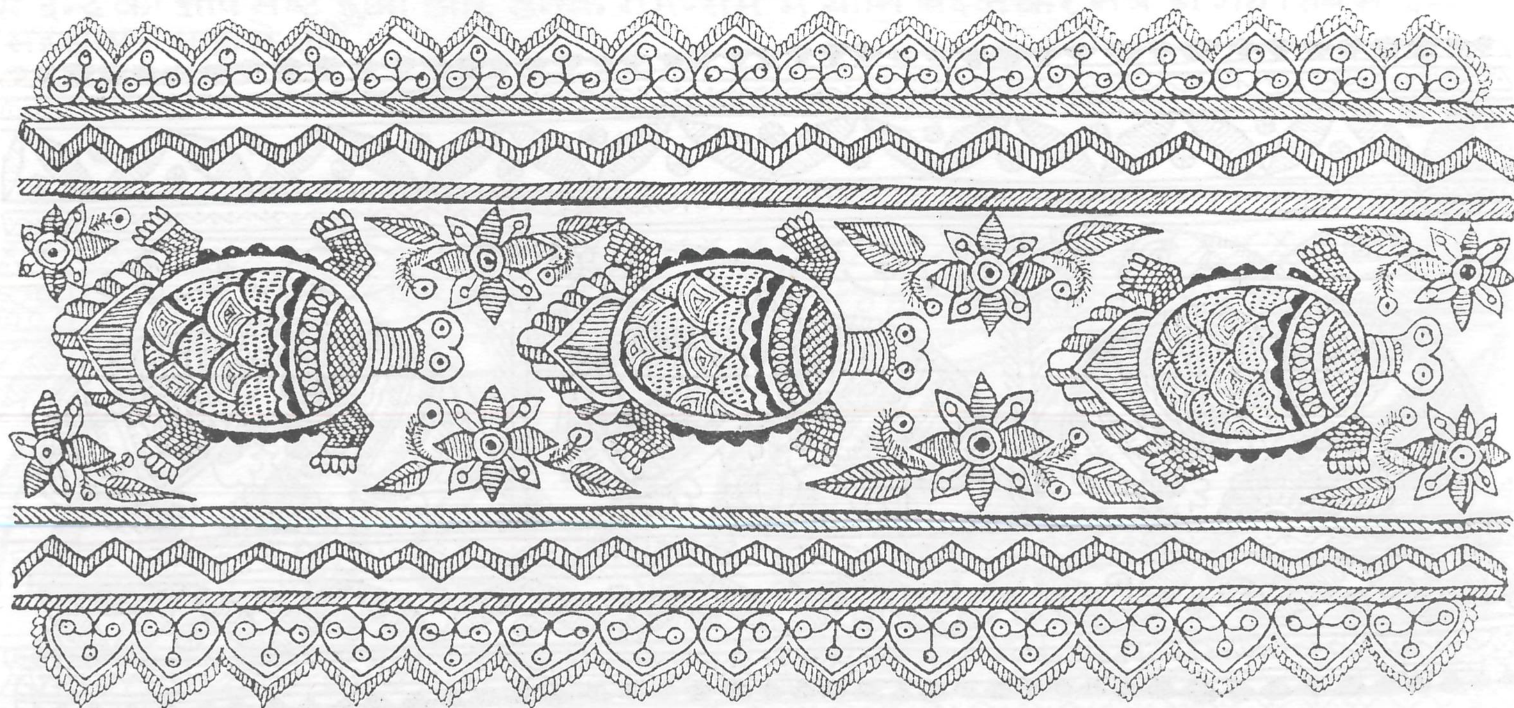
" क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप
जय जगदीश हरे ॥ "



कच्छपावतार धारण करके श्रीभगवान बार-बार पृथ्वीको अपने पृष्ठपर धारण करते रहते हैं। इस कारणसे उनके पृष्ठपर पृथ्वीके घर्षणसे चिन्होंका जाल-सा बन गया है जिससे वे समलंकृत हैं।

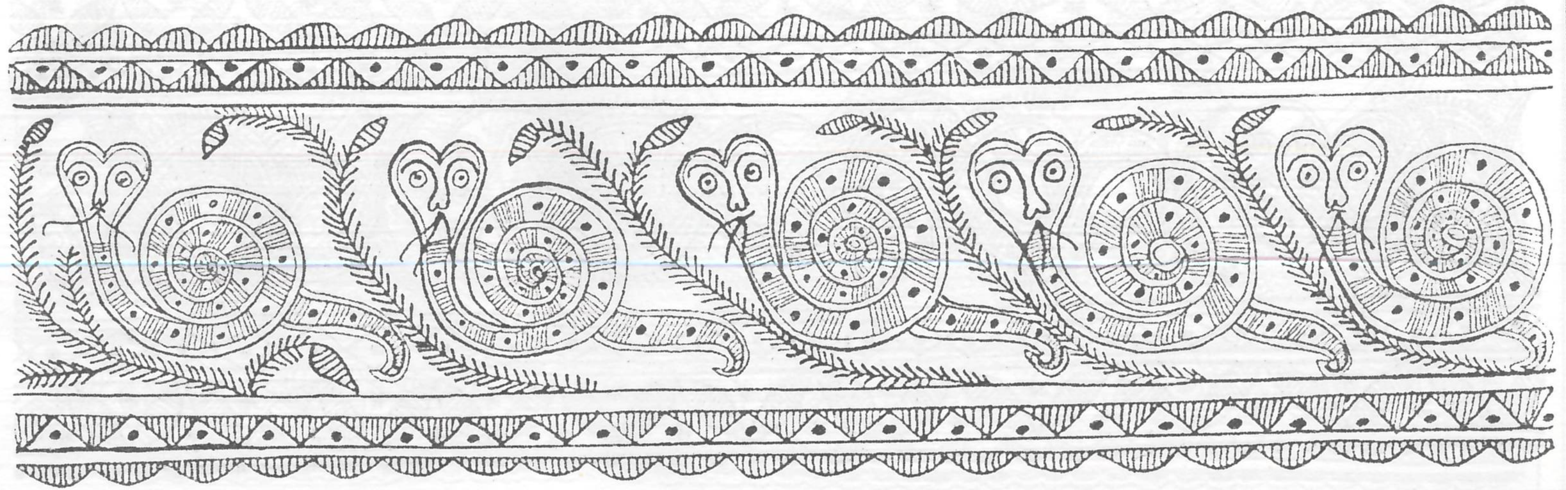
हे कच्छपरूप धारण करनेवाले जगतके स्वामी, केशव! आपकी जय हो।

(गीतगोविन्द)।



सर्पकोर

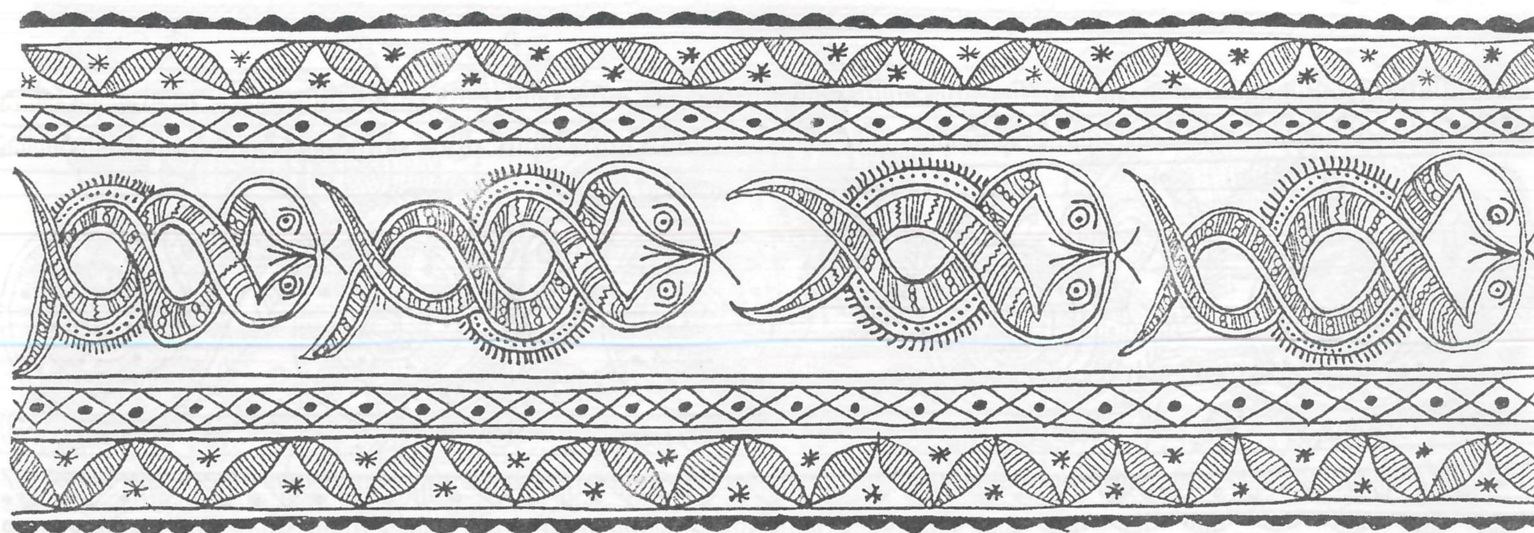
सर्प धैर्य, उत्कट अभिलाषा, भौतिक सम्पदा और
कामातिरेकका प्रतीक है।



"मदन भुजंगम दंसल कान। बिनहि अमिअ-रस की करब आन॥"

— विद्यापति

'श्रीकृष्णको काम रूपी सर्पने डँस लिया है। अमृत-रस (राधा) के बिना और किसी रससे उसे क्या लाभ होगा ?



ए धनि मानिनि करह संजात।
तुअ कुच हेम-घट हार भुजंगिनि। ताक उपर धरु हाथ॥
तोहें छाडि जदि हम परसब कोय। तुअ हार-नागिनि काटब मोय॥"

हे मानिनी सुन्दरी, तुम अपने क्रोधको संयत करो; तुम्हारे कुचरुपी सोनेके घड़े और हाररुपी सर्पिणीपर हाथ रखकर मैं शपथ लेता हूँ कि यदि तुम्हें छोड़कर मैं किसी अन्य स्त्रीका स्पर्श करूँ तो तुम्हारा हार नागिन बनकर मुझे डँस ले।

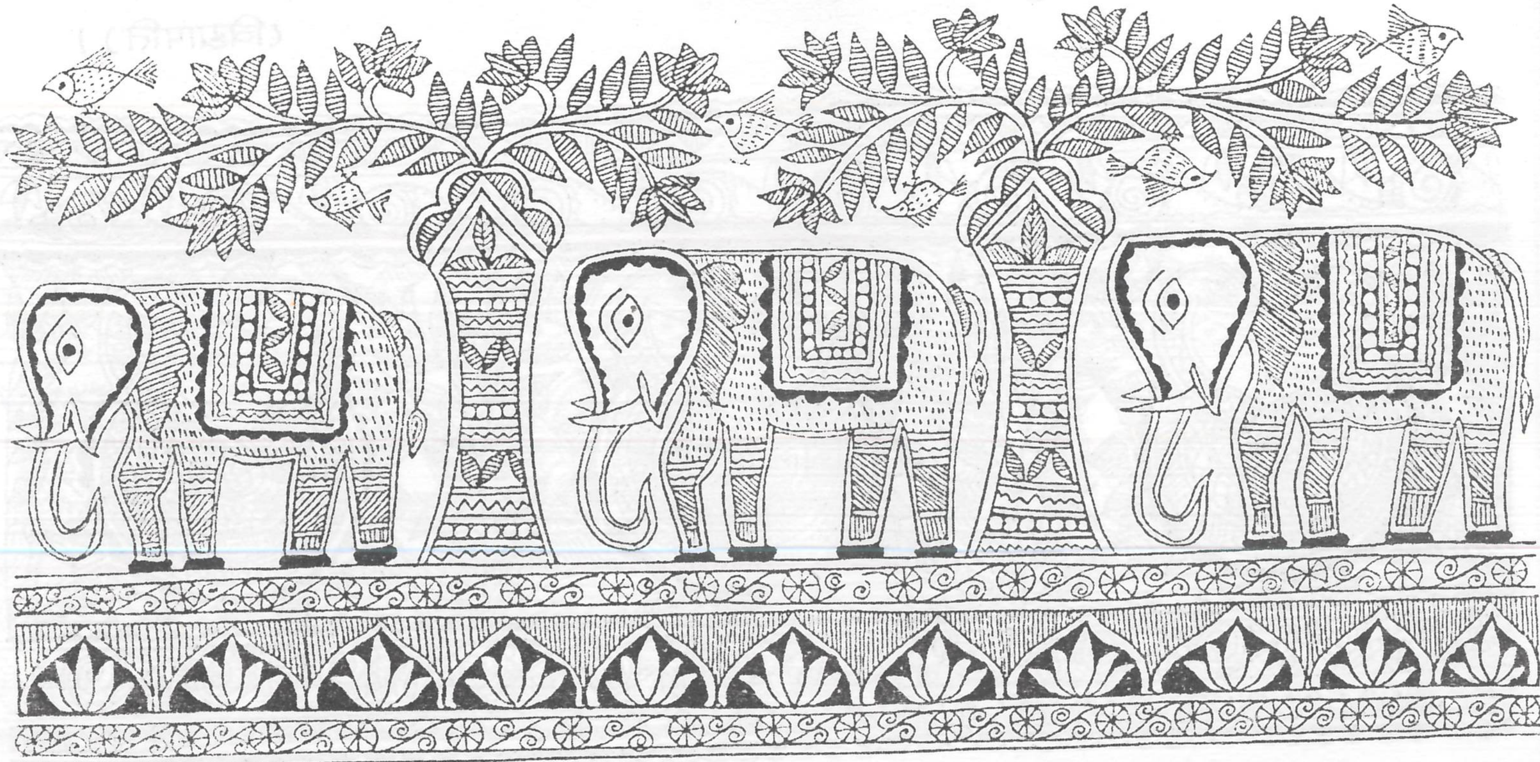
(विद्यापति)।

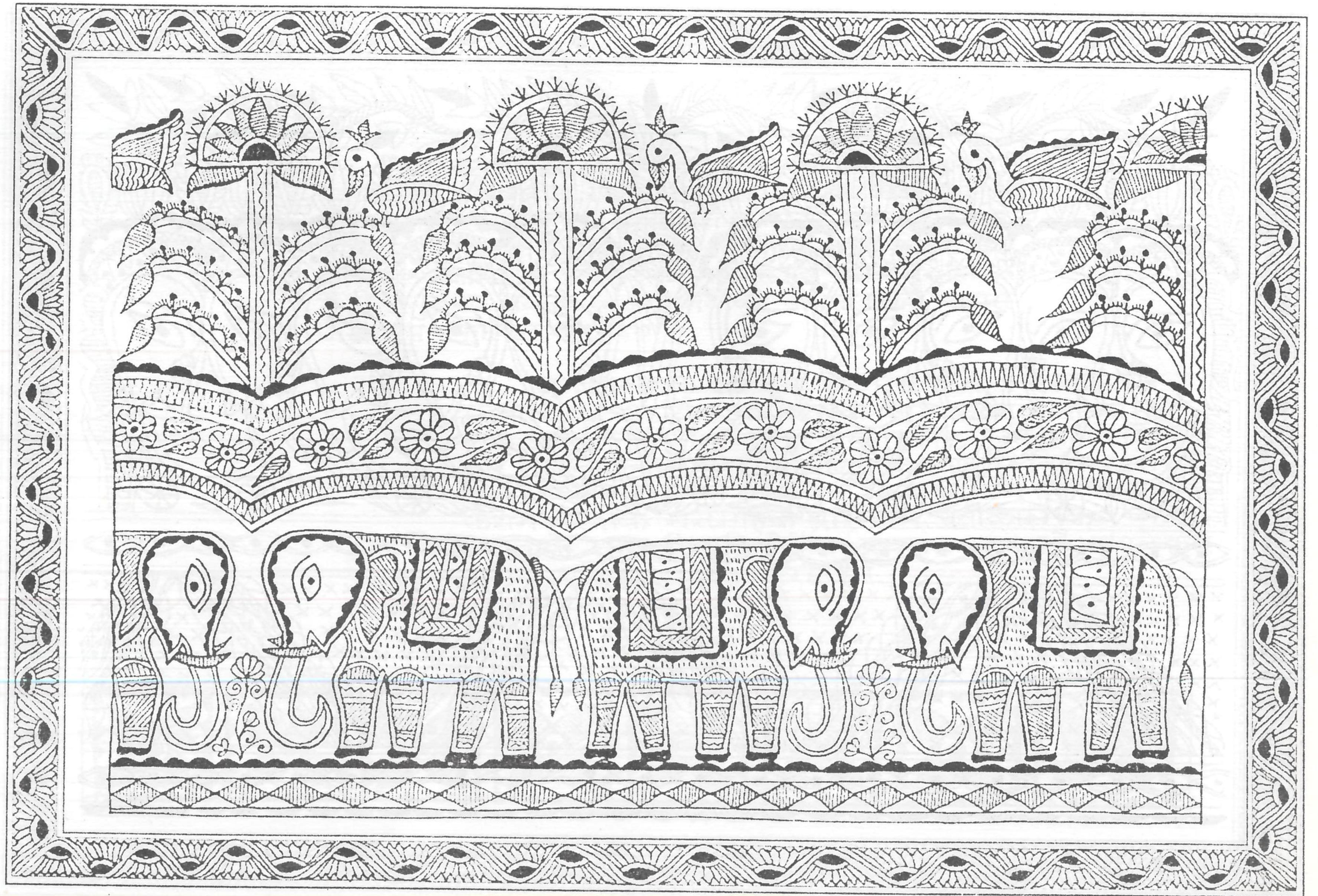


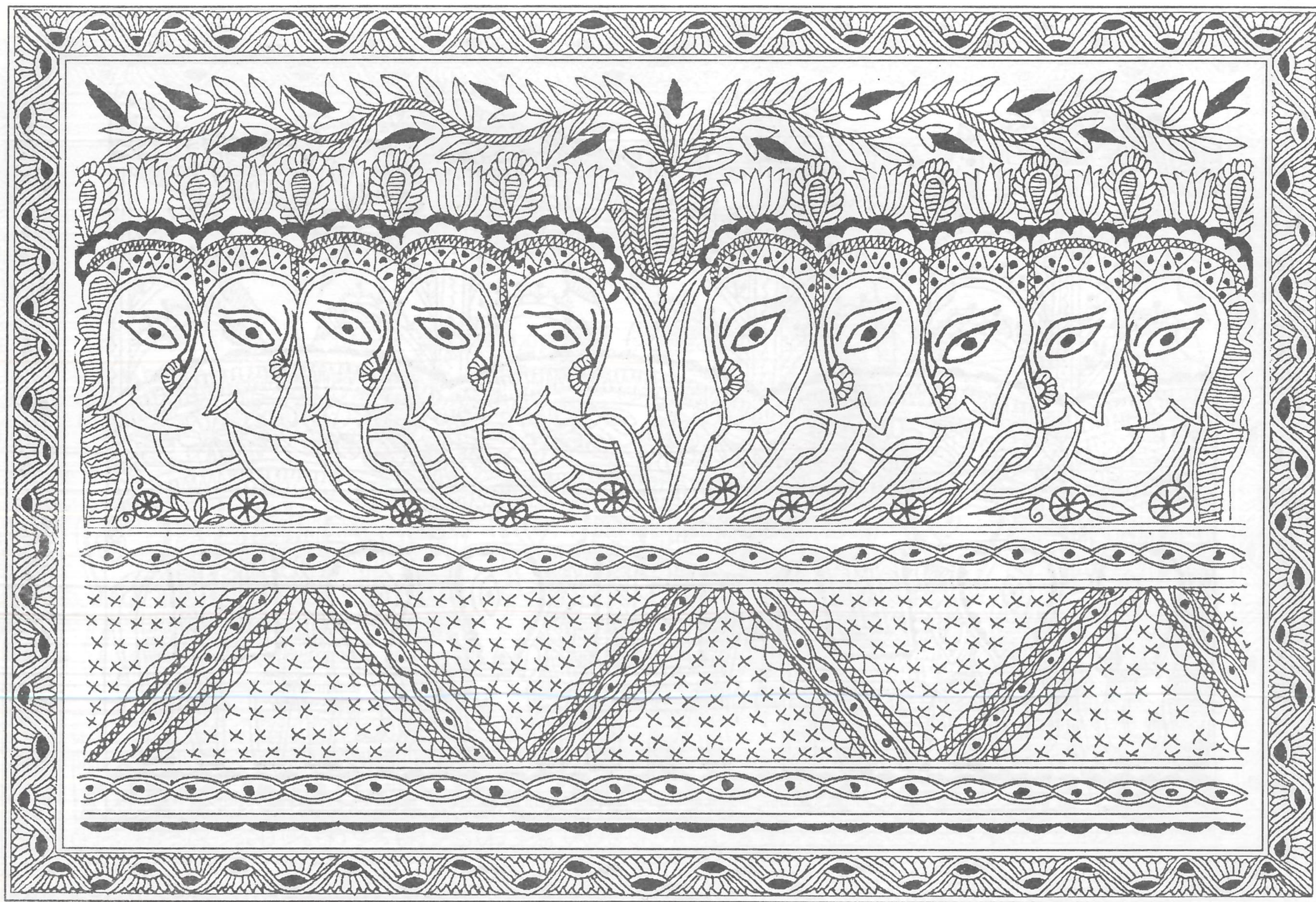
हस्तिकोर

"अमिअ सागर तुहु से राहि। मुकुंद मातंग बिहर ताहि॥"

हे राधा! तुम अमृतके सागरके समान हो और मस्त हाथीके समान कृष्णने उसमें विहार किया है। (विद्यापति)।



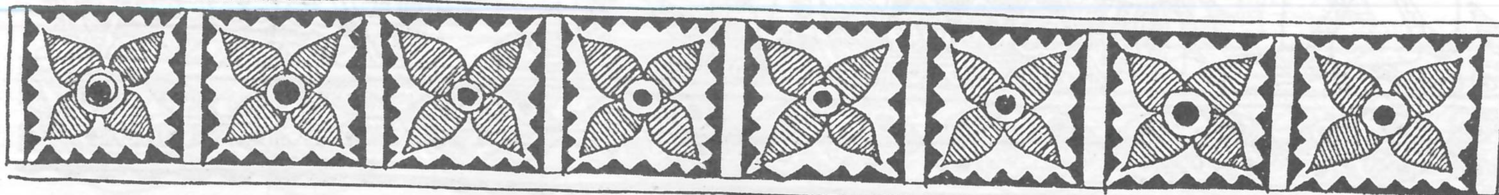




मूर्त्तिकोर

सन् उन्नीस सौ सत्तरके दशकमें जब मिथिला चित्र चटक रंगों और महीन रेखाओंसे सज्जित होकर विश्व-कलाके मंचपर प्रोद्भासित हुए उस समय इस कलाकी अभिव्यक्तिके प्रसंग बहुत सीमित थे। पौराणिक- वैवाहिक मूर्ति- चित्रों और तांत्रिक - ज्यामितिक अरिपनोंसे समन्वित इन चित्रोंने अल्पकाल में ही समुद्रपार तकके कलाप्रेमियोंको अपनी छवि-छटासे जैसे मंत्र- कीलित कर दिया।

सन अस्सीके दशकमें इस पुस्तकके लेखकद्वयने सामाजिक -आर्थिक परिवर्तनके लिए कलाके माध्यमसे एक आन्दोलनका प्रवर्तन किया। इस क्रममें आपने मिथिला और गोदना चित्रशैलियोंको शिक्षाके साथ ही विविध औद्योगिक माध्यमके रूपमें विकसित किया। आज इन शैलियोंमें फैशन वस्त्रोंके मनमोहक प्रारुपोंमें प्रतीकात्मक कोर-सज्जाके साथ ही मूर्त्तिकोरोंका प्रचलन बढ़ रहा है। अगले कुछ पृष्ठोंमें मूर्त्तिकोर दिए जा रहे हैं।



स्वयंवर

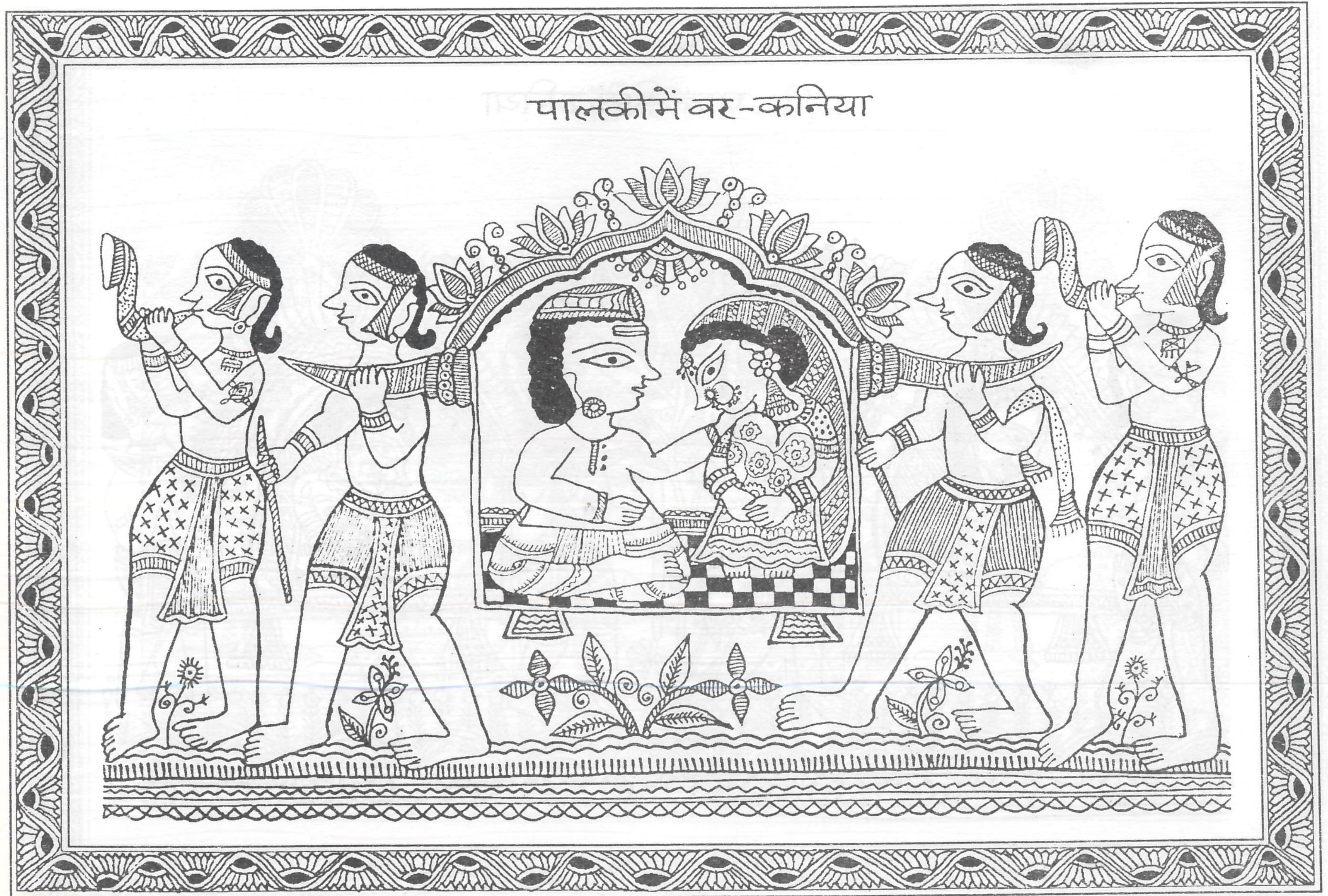


मिलन




कोबरमें वर-कनिया


पालकीमें कनिया


पालकीमें वर-कनिया

नर्त्तकी

"उतरहि राज सँ अयलइ एक नटिनिया रे जान।
रे जान, बैसि रे गेलइ चन्दन   बिरिछिया रे जान॥"



सूर्यकोर

सिंदुर तिलक तरनि सम भास। धूसर मुख-ससि नहि परगास॥
एहन समय पूजह पँचबान। होअ उगरास देह रतिदान॥

(विद्यापति)।



हे कृष्ण! राधाके सिरपर सिंदूरका टीका सूर्यके समान है जिसके प्रकाशमें उसका पूर्ण चन्द्रके समान मुख ग्रहण लगे चन्द्रमाकी भाँति धूसर—निष्प्रभ हो गया है। ऐसे उपयुक्त **अवसर**पर रतिदान देकर चन्द्रमाको ग्रहणसे मुक्ति दिलाओ।



चन्द्रकोर



"सुन्दर बदन सिंदुर-बिन्दु सामर चिकुर भार।
जानि रवि-ससि संगहि ऊगल पाछु कए अंधकार॥"

सुन्दरीका मुखमण्डल —— सुन्दर मुख, सिंदूरका बिंदु तथा काला केशपाश — तीनों एक ही जगहपर एकत्रित देखकर महाकवि विद्यापतिको लगा जैसे काले सघन केशपाशरुपी अंधकारको पीछे ढकेलकर सूर्य (सिंदूर विंदु) और चन्द्रमा (मुख) एक साथ उग आए हों।

(विद्यापति)।



योनिकोर

मिथिला चित्रशैलीमें 'योनि' हड़प्पा सभ्यतासे उपहृत है।
शिव और शक्तिके प्रतीक और सुख-सौभाग्यकी प्रदात्रीके रूपमें पूजित
'योनि' कोबर-कक्ष (मधुकक्ष) का परमावश्यक आलेखन है। प्राचीन परम्परामें
योनिका अंकन भित्तिके उस भागमें किया जाता था जहाँ मधुरभावसे
सम्पृक्त युगल-जोड़ीकी सम्मुख दृष्टि पड़ती हो।

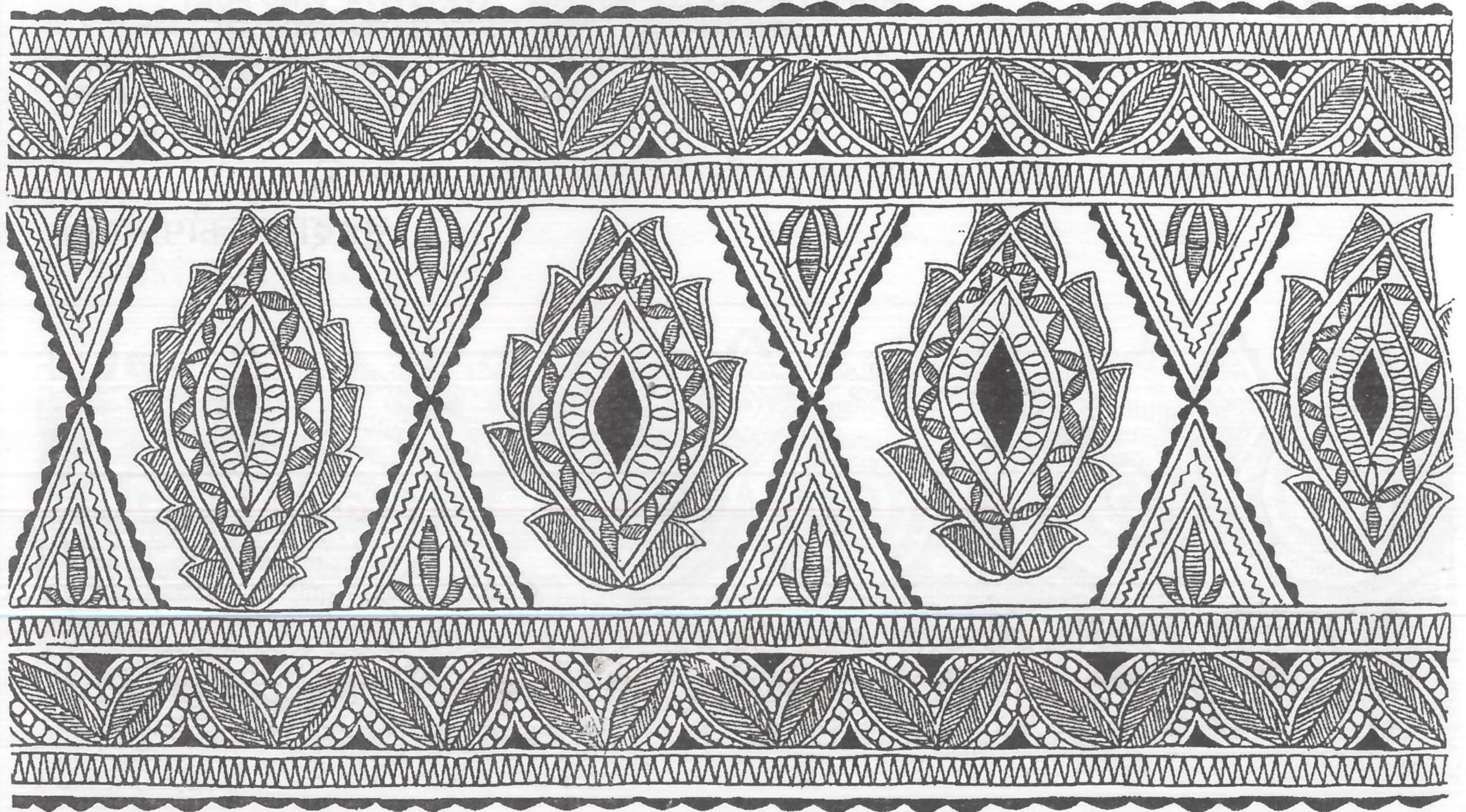
मिथिला चित्रकलामें योनि धात्रीकी तरह आराध्य है।



घोषा वा अग्निर्गौतम
तस्या उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो
योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेङ्गारा
अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नग्नौ
देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः
संभवति स जीवति यावज्जीवत्यथ
यदा म्रियते ॥

— (बृहदारण्यकोपनिषद)

पद्मयोनि



हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है,
उपस्थ ही उसकी समिध है,
लोम धूम है, योनि ज्वाला है,
मैथुनव्यापार अंगार है और
आनन्द-अनुभूति ही स्फुलिंग है ।
उस अग्निमें देवगण वीर्यकी आहुति देते हैं
जिससे जन्मता है मानव,
जब तक कर्म शेष रहता है,
वह जीवित रहता है ।

(बृहदारण्यकोपनिषद)।

हस्तियोनि







मुद्रक : शेखर प्रकाशन, पटना – 24, दूरभाष : 9334102305